संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला तृतीय–पुष्पम्
ISSN : 2348 -0890

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक
प्रो.भास्कर मिश्र
कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक
प्रो.प्रेम कुमार शर्मा
ज्योतिष विभागाध्यक्ष

उप–सम्पादक
डॉ.बिहारी लाल शर्मा

ज्योतिष–विभाग
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली - 110016

ISSN : 2348 - 0890

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला तृतीय-पुष्पम्

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक
प्रो. भास्कर मिश्र
कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक
प्रो. प्रेम कुमार शर्मा
ज्योतिष-विभागाध्यक्ष

उप-सम्पादक
डॉ. बिहारी लाल शर्मा

ज्योतिष-विभाग

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-16

प्रकाशक:
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालय:)
कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

जुलाई, 2014

मूल्यम् : 150/- ₹

मुद्रक:
अमरप्रिंटिंगप्रेस:
देहली-११०००९
दूरभाष: : 9871699565, 8802451208

पुरोवाक्

भारतीयसनातनपरम्परायां लोककल्याणहेतुकानां शास्त्राणां महत्त्वम् अनेनैव विज्ञातुं शक्यते यदेतेषु मानवजीवनस्य समेषामपि पक्षाणां महत्त्वाधायकं विवेचनं सुतरां समुपलभ्यते। आगमेष्वेतेषु वेदपुरुषस्थस्य ज्ञानविशिष्टस्य विवेचनपुरस्सरं प्रायोगिकतत्त्वानां समीक्षणं विस्तरेण संप्राप्यते। वेदेषु निहितज्ञानस्य अवाप्तये वेदाङ्गानां अधिगमात्मकम् अनुसरणमत्यावश्यकमपरिहार्यञ्च विद्यते। ज्ञानस्य विशिष्टान्युद्देश्यानि विवेचयन् महाभाष्यकारो महर्षिपतञ्जलिः ब्रूते यद् **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति**। अर्थाद् गरीयांसो जनाः निरीहाः भूत्वा व्याकरणादिशास्त्राणाम् अधिगमनं कुर्युरिति। इत्थमेवान्येषां वेदाङ्गानां लोककल्याणकारि प्रयोजनं तत्तद्विषयेषु अधिगन्तुं शक्यते। प्रक्रमेऽस्मिन्नेव सिद्धान्त-संहिता-होरेति- स्कन्धत्रयात्मकस्य वेदपुरुषस्य चक्षुर्भूतस्य ज्योतिशास्त्रस्य प्रवर्तनं भवति। शास्त्रेऽस्मिन् वात-पित्त-कफेति-त्रिधातुप्रतिनिधिभूतानां ग्रहाणां दुर्बलत्वादिदोषैः हेत्वन्तरैर्वा उद्भूतानां रुजां ज्ञानप्रविधयः, तल्लक्षणानि तन्निदानोपायाश्च विस्तेरण विविक्तास्सन्ति। 'ज्योतिर्वैद्यौ निरन्तरौ' इत्युक्त्या ज्योतिषशास्त्रस्य आयुर्वेदस्य च सहसम्बन्धः समुद्भवति। अनयोः शास्त्रयोः देहस्य वैशिष्टयपूर्णं रोगारोग्यचिन्तनं क्रियते। यथा चिकित्साशास्त्रे शरीरविज्ञानमेव आधारीकृत्य रोगविषयकानि लक्षणानि तदुपायाश्च विविच्यन्ते तथैव ज्योतिषशास्त्रेऽपि द्वादशस्थानेभ्यः अङ्गविभागं विभज्य तत्तदङ्गस्योपरि कस्य ग्रहस्य राशेर्वा आधिपत्यमस्तीति परिशीलनं कृत्वा के के ग्रहाः कस्मिन् स्थाने स्थिताः भूत्वा कीदृशान् रोगान् प्रकटीकुर्वन्तीति विशिष्टतया विचार्यतेऽस्मिन्। ज्योतिषशास्त्रे रोगोत्पत्तौ त्रिविधानि कारणानि सन्ति, जन्मान्तरीयं कर्म सञ्चित कर्म उच्यते तत्कर्मणा ये रोगाः उद्भवन्ति ते जन्मान्तरीया रोगाः उच्यन्ते। रोगाणामेतेषां ज्ञानं जन्मकुण्डलीद्वारा तत्रस्थैः योगैश्च भवति। संचितकर्मणः फलप्राप्तिसकाशादेव प्रारब्धकर्म संजायते। प्रारब्धकर्मणा जायमानरोगाणां ज्ञानं विंशोत्तर्यादिभिः दशाभिः ज्ञायते। यन्नित्यं क्रियते, तदेव क्रियमाणं कर्म उच्यते। मिथ्याहारविहारेभ्यः समुद्भूताः रोगाः ग्रहगोचरेण अपि ज्ञायन्ते। रोगज्ञानानन्तरं मणिमन्त्रौषधिभिः तच्छमनोपायः अन्विष्यमाणो भवति। भैषज्यज्योतिषमञ्जूषेति सम्पाद्यमानायाम् अस्यां पत्रिकायां नैके रोगाः विशिष्टरूपेण विषयीभूताः सन्ति। उन्मादरोगः, कर्णरोगः हृदयरोगः, नेत्ररोगः, मनोरोगः पक्षाघातरोगश्चेत्यादिकानां रोगाणां ज्योतिषीय-दृष्टिकोणपुरस्सरं तच्छमनोपायाः उत्कृष्टतया विवर्णिताः सन्त्यत्र। भैषज्यज्योतिषम् अवलम्ब्य विहिताः चिन्तनपन्थानः सुतराम् उपयोगिनो भविष्यन्ति विविधरोगैः संपीड्यमानस्य समाजस्यास्य कृते। एतदेव विचिन्त्य विद्यापीठेन ज्योतिषविभागान्तर्गतं भैषज्यज्योतिषविषयकः सान्ध्यकालीनः पाठ्यक्रमः शोध कार्यैः सह सञ्चाल्यमानोऽस्ति।

अस्मिन्नेव क्रमे कार्यक्रमसंयोजकेन **प्रो. प्रेमकुमारशर्मणा**, सहसंयोजकेन **डॉ. बिहारीलाल-शर्मणा**, विभागस्थैः अन्यैः विशिष्टैः आचार्यैश्च **भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा तृतीयाङ्कः** इति लेखसरणिः प्रयत्नेन संपादिताऽस्ति। अत एते ज्योतिषविभागस्थाः समेऽप्याचार्याः धन्यवादार्हाः। भैषज्यज्योतिषस्योपयोगिताधिक्यात् विषयेऽस्मिन् क्रियमाण एषः प्रयासः समाजस्य कृते कल्याणकरो भविष्यतीति अधिगम्याहमस्य कृते समेषामाचार्याणां धन्यवादं प्रकल्पयन् **''भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा तृतीयाङ्कः''** इति षाण्मासिकीं पत्रिकां भैषज्यज्योतिषशास्त्रानुरागिणां विद्वद्वरेण्यानाम् आचार्याणां कृते समर्पयन् अतीवामोदमनुभवामीति।

प्रो. भास्करमिश्रः

कुलपतिः (प्रभारी)

सम्पादकीय

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'[1] इस सूक्ति के अनुसार शरीर के स्वस्थ्य होने पर ही मानव धर्म एवं कर्म की ओर प्रवृत्त होता है। आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्र ही ये दो ऐसे विषय हैं, जो सम्पूर्ण रूप से शरीर के रोगारोग्य का विचार करते हैं। **'दोषधातुमलमूलं हि शरीररम्'**[2] सुश्रुत की इस उक्ति के अनुसार दोष, धातु एवं मल शरीर की रोगारोग्यता के मूल कारण हैं। अतः वात-पित्त-कफ इन तीनों प्रकृतियों, रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र इन सप्तधातुओं और पुरीष-मूत्र-स्वेद इन मलों की प्रकृतावस्था या साम्यावस्था में शरीर स्वस्थ्य रहता है तथा वात-पित्त-कफ की विकृतावस्था में जिस प्रकृत्ति में विकृति उत्पन्न होती है, वह सप्तधातुओं और मलों को दूषित करने से उस प्रकृति से सम्बन्धित दोष उत्पन्न करने के कारण उन-उन धातुओं से सम्बन्धित रोग उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः मानव द्वारा भुक्त आहार देहाग्नि से परिपक्व होकर प्रसाद और मल इन दो भागों में विभक्त होता है। प्रसाद भाग से सप्तधातुओं की रचना होती है तथा मल भाग कान, आंख, नाक एवं गुह्य भागों से शरीर से पृथक् हो जाता है। सुपथ्य एवं सन्तुलित आहार लेने पर वात-पित्त-कफ प्रकृति, सप्तधातुओं एवं मल साम्यावस्था या प्रकृतावस्था में रहते हैं तथा कुपथ्य एवं असन्तुलित आहार करने पर वात-पित्त-कफ प्रकृति में से किसी एक के प्रकुपित होने पर वह सप्तधातुओं एवं मलों में से जिस धातु एवं मल को दूषित करती है, उस धातु एवं मल से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होता है। ज्योतिषशास्त्र में भी काल स्वरूप पुरुष के अङ्गों में सिर से लेकर पैर तक मेष आदि द्वादश राशियों को स्थापित करके अङ्ग विभाग किया गया है। कालपुरुष के शरीर में मेषराशि सिर का, वृष मुख का, मिथुन वक्षःस्थल का, कर्क हृदय का, सिंह उदर (पेट) का, कन्या कटिप्रदेश (कमर) का, तुला बस्ति का, वृश्चिक गुह्येन्द्रिय का, धनु उरुस्थान का, मकर घुटने का, कुम्भ जाँघों का तथा मीन पैरों का प्रतिनिनिधत्व करती है।[3] जन्मकाल में कालपुरुष के जिस अङ्ग में शुभग्रह हों, वे अङ्ग पुष्ट तथा जिस अङ्ग में अशुभग्रह हों, वे अङ्ग रोगग्रस्त होते हैं।[4]

ज्योतिषशास्त्र में सूर्यादि ग्रहों की वात, पित्त और कफ प्रकृति का विचार किया गया है। सूर्य पित्त का, चन्द्र वात और कफ, मंगल पित्त, बुध वात, पित्त एवं कफ त्रिदोष का, गुरु कफ,

---

1 कुमारसम्भवम्, सर्ग 5, श्लो. सं. 33

2 सुश्रतु संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 15, सूत्र 3

3 कालात्मकस्य च शिरोमुखदेशवक्षोहृत्कुक्षिभागकटिबस्तिरहस्पदेशाः।
उरु च जानुयुगलं परतस्तु जङ्घे पाददूयं क्रियमुखावयवाः क्रमेण।।
जातकपारिजात, राशिशीलाध्याय 1, श्लो. सं. 8

4 कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च।। (लघुजातकम्)

शुक्र कफ और वात तथा शनि वात प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है।[5] इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों से सप्तधातुओं का विचार किया गया है। सूर्य से अस्थि का, चन्द्र से रक्त, मंगल से मज्जा, बुध से त्वचा, गुरु से वसा, शुक्र से वीर्य तथा शनि से स्नायु का विचार किया गया है।[6]

ज्योतिषशास्त्र में रोग के निर्धारण के लिए जन्मलग्न से अष्टमराशि अथवा अष्टमस्थान को देखने वाला ग्रह कालपुरुष के जिस अङ्ग की राशि में स्थित हो उस अङ्ग में उस ग्रह की प्रकृति के अनुसार रोग कहा गया है।[7] इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों के जो वात, पित्त कफादिदोष और अस्थि, रक्त, मज्जादि धातुयें कही गयी हैं, उनमें पूर्वोक्त रीति से ग्रह के रोगकारक होने पर उसके दोष और धातु से उत्पन्न होने वाला रोग कहना चाहिए।[8] इसके अतिरिक्त बृहज्जातक आदि होराशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थों में प्रतिपादित पापग्रहों से युत एवं दृष्ट विविध योगों के आधार पर भी पूर्वजन्म में किये गये पापकर्म के दुष्ट प्रभाव से उत्पन्न रोगों के भेदों की जानकारी करनी चाहिए।[9] इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में कहा गया है, कि जन्म-जन्मातरों में किया गया पाप व्याधि के रूप में उत्पन्न होता है तथा उसकी शान्ति औषधि, दान, जप-होम और पूजा आदि के अनुष्ठान से होती है।[10]

आयुर्वेद में व्याधियाँ तीन प्रकार की कही गयी हैं- 1. कर्मजन्य, 2. दोषजन्य तथा 3. कर्मदोषोभयजन्य, इन तीन प्रकार की व्याधियों में सद्वृत्त, नियमित आहार-विहार करने पर भी जो ऋतुजन्य रोग उत्पन्न होते हैं, वे कर्मजन्य हैं, ये बिना कारण के तथा बिना चिकित्सा के जप-तप-प्रायश्चित्त आदि क्रिया से कर्मों का क्षय होने पर नष्ट हो जाते हैं। जो दोषसंक्षय हेतुओं से शान्त होते हैं, वे दोषजन्य रोग होते हैं, जो रोग स्वल्पदोष से अतिकष्टदायक तथा अधिक दोष वाले होते हुए भी मृदुरूप में रहते हैं कर्मदोषोभयजन्य होते हैं।[11]

---

5 पित्तं वातकफौ पित्तं वातपित्तकफा: कफ:।
कफवातौ च वातश्च सूर्यादीनां प्रकीर्तिता:।। प्रश्नमार्ग, अध्याय 11, श्लो. सं. 4

6 स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा। मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमा:।।
बृहज्जातक ग्रहयोनिप्रभेदाध्याय, श्लो. सं. 11 उ.अ.

7 कालाङ्गेष्वष्टमो राशिर्ग्रहो कष्टमवीक्षक:।
जन्मकाले स्थितो यत्र तत्राङ्गे तद्गदोद्भव:।। प्रश्नमार्ग, अध्याय 11, श्लो. सं. 5

8 यस्य ग्रहस्य यो दोष: पित्तादिष्विह कीर्तित:।
तेन रोगे तु वक्तव्ये वाच्यस्तद् दोषजो गद:।। प्रश्नमार्ग, अध्याय 12, श्लो. सं. 29

9 पापालोकितयोराद्यैर्योगैर्होरादिषूदितै:। अपि ज्ञेया रुजां भेदा: प्राग्जन्मदुरितोद्भवा:।।
प्रश्नमार्ग, अध्याय 12, श्लो. सं. 30

10 जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभि:।। प्रश्नमार्ग, अध्याय 13, श्लो.सं. 28

11 कर्मजाव्याधय: केचिद् दोषजा: सन्ति चापरे। कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये कर्मजास्तेष्वहेतुका:।।
नश्यन्ति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभि: कर्मसंक्षये। शाम्यन्ति दोषसम्भूता दोषसंक्षयहेतुभि:।।
तेषामल्पनिदाना ये प्रतिकृष्टा भवन्ति च। मृदवो बहुदोषा वा कर्मदोषोद्भवास्तु ते।।
सुश्रुतु संहिता, उत्तरतन्त्रम्, श्लो. सं. 163-165

इस प्रकार दोषजन्य रोगों का निदान आयुर्वेद में प्रतिपादित युक्तिव्यपाश्रय से तथा कर्मजन्य रोगों का उपचार दैवव्यपाश्रय के उपायों द्वारा किया जाता है। दोषजन्य रोगों का उपचार रोग के उपरान्त ही किया जा सकता है, किन्तु कर्मजन्यरोगों की सम्भावना का विचार रोग होने से पूर्व ही किया जा सकता है और उसका उपाय किये जाने पर रोग से होने वाले कष्ट से बचाव किया जा सकता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विद्यापीठ के ज्योतिषविभाग को प्रदत्त विशेष सहायता कार्यक्रम (सैप) के अन्तर्गत आयोजित संगोष्ठियों, विशिष्ट व्याख्यानों एवं ज्योतिष तथा आयुर्वेद के शोध लेखों में से विभागीय प्रकाशन समिति के द्वारा मानक शोधात्मक लेखों का चयन करके **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा'** का यह **तृतीय षाण्मासिक अङ्क** प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशय है हमारा यह प्रयास रोग से ग्रस्त समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। विद्यापीठ एवं ज्योतिष विभागीय विभिन्न पाठ्यक्रमों के उन्नयन के लिए सर्वप्रथम विद्यापीठ के संस्थापक कुलपति **श्रद्धेय स्व. मण्डन मिश्र** एवं उन्हीं के प्रयास को चरम और परमसीमा तक पहुँचाने वाले पूर्वकुलपति **प्रो. वाचस्पति उपाध्याय**, ज्योतिष-विभाग के उन्नायक **श्रद्धेय प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी** जी का स्मरण करते हुए विद्यापीठ के वर्तमान कुलपति (प्रभारी) **प्रो. भास्कर मिश्र** जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। ज्योतिष विभाग के अध्यक्षचर **प्रो. ओंकारनाथ चतुर्वेदी** जी एवं **आचार्य रामदेव झा** जी का ज्योतिष विभाग की प्रत्येक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में आशीर्वाद रहता है। आप दोनों विभूतियों का अभिवादन करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। शोध एवं प्रकाशन विभागाध्यक्ष **प्रो. रमेशकुमार पाण्डेय** एवं वास्तुविभागाध्यक्ष **प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी** जी के यथासमय योगदान के लिए धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। विद्यापीठ के कुशलप्रशासक कुलसचिव **डॉ. बी.के. महापात्र**, वित्ताधिकारी **श्रीमती कल्पना सिंह** सहायक कुलसचिव (प्रशासन) **डॉ. शिवदत्त त्रिपाठी** सहायक कुलसचिव (वित्त) **अजय कुमार टण्डन** तथा प्रकाशन के सभी अधिकारियों का पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसी सन्दर्भ में पत्रिका के उप-सम्पादक **डॉ. बिहारी लाल शर्मा** एवं ज्योतिष विभागीय प्रकाशन समिति के अपने सभी सदस्यों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह तृतीय अङ्क समाज एवं राष्ट्र तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त हुई है।

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा
अध्यक्ष-ज्योतिष-विभाग
को-आर्डिनेटर सैप (डी.आर.एस.-ज्योतिष)

सम्पादक मण्डल

विषयानुक्रमणिका

ग्रहाणां रोगकारकत्वे ज्योतिषशास्त्रीयाः प्रमुखाः हेतवः

डॉ. बिहारी लाल शर्मा

ग्रहनक्षत्रादीनां गतिस्वरूपनिर्णायकमिदं ज्योतिषशास्त्रं षट्सु वेदाङ्गेष्वन्तर्भूतं होरागणित संहितेतिस्कन्ध त्रयान्वितं लोकानां शुभाशुभफलदर्शने परमोत्कर्षभूतम् अस्ति। जगतः शुभाशुभनिरूपणे प्रवृत्तमिदं शास्त्रं कथं मानवस्य आरोग्यविषयकं चिन्तनं निरूपयति ? कस्तावत् चिकित्साशास्त्रेण सह अस्य शास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धः ? इत्यस्मिन् विषये जिज्ञासा अवश्यवमेव समुदेति। यतो हि रोग-आरोग्ययोः विषयः वैद्यशास्त्रज्ञानां कृते आरक्षितोऽस्ति। एवं सति ज्योतिषं यथा मनश्शास्त्रं चिकित्साशास्त्रे यादृशं स्थानं प्राप्नोति किं तादृशमेव स्थानमदं शास्त्रं भजति न वेति चेदुच्यते चिकित्साशास्त्रे मनश्शास्त्रवत् प्रत्यक्षं दृश्यफलं ज्योतिषशास्त्रस्यापि अस्ति मानवस्य आरोग्यविषये दृष्टरूफलप्रदायकस्य ज्योतिषशास्त्रस्य उपादेयता विश्वविश्रुता अस्ति।

ज्योतिषशास्त्रे द्वादशस्थानेभ्यः अङ्गविभागं परिकल्प्य तत्तद् अङ्गस्योपरि केषां ग्रहाणाम् स्थितिः अस्ति ? तद्ग्रहाणां सकाशात् कीदृशाः रोगाः उद्भवन्ति ? रोगाणाम् उद्भवने ग्रह-सम्बद्धाः के प्रमुखाः हेतवः सन्ति ? इति विषये विचार्यमाणोऽस्ति अस्माभिरग्रे होराशास्त्रे। होराशास्त्रे ग्रहाणां रोगकारकत्वे विविधानि कारणानि प्रतिपादितानि तानि च-

(क) रोगभावस्य स्वामित्वम्

(ख) अष्टमव्ययभावयोश्च स्वामित्वम्

(ग) रोगभावेषु ग्रहाणां स्थितिः

(घ) सति लग्नाधिपे लग्नस्थाः ग्रहाः

(ङ) नीचराशिस्थशत्रुराशिस्थ-ग्रहाणां स्थितिः

(च) ग्रहाणामवरोहित्वम्

(छ) राशिसन्धिगतग्रहाः

(ज पापग्रहाणां प्रभावः

(झ) ग्रहाणामरिष्टकारकत्वं मारकत्वञ्च

रोगभावस्य स्वामित्वम्

षष्ठभावस्यैव नाम **'रोगभाव:'** इति। अस्मिन् भावे शुभग्रहाणां प्रभावो रोगस्य वृद्धिकारकस्तथा च पापग्रहाणां प्रभावो रोगस्य ह्रासकारको भवति। जातकग्रन्थेषु भावफल-विश्लेषण-पुरस्सरं सिद्धान्तपक्ष: स्थापितो यथा, यो भाव: शुभग्रहयुक्त: उत वा स्वामिना दृष्टो युतो वा भवति तस्य भावस्य नैसर्गिकफलस्य वृद्धिर्भवति। यश्च भाव: पापग्रहेण दृष्ट: युतो वा भवति तस्य प्राकृतिकफलस्य ह्रासो भवति।1 उक्तञ्च जातकपारिजाते दैवज्ञवैद्यनाथेन -

तन्वादिभावेषु शुभोदयेषु तद्भावनाथोपगतेक्षितेषु।
तदुक्तभावस्य समृद्धिरुक्ता नपापखेटेक्षितसंयुतेषु।।

अर्थात् तनुधनुसहजादयो द्वादशभावा: भवन्ति। तेन तन्वादिद्वादशभावेषु शुभग्रहाणां स्थितिवशाद् भावेशस्य च स्वस्मिन् स्थाने एव स्थितत्वात् तथा च शुभग्रहाणां दृग्योगत्वात् भावस्य समृद्धिर्भवति। षष्ठ भावस्य रोगभावत्वात्तस्य नैसर्गिकं फलं रोगोत्पत्ति: वर्तते। अत: अस्योपरि (षष्ठभावे) ग्रहाणां शुभप्रभावेण रोगाणामुपचयपापप्रभावेण च रोगाणामपचयो भवति। षष्ठभावे मेषादयो राशयो अधोलिखितान् रोगानुत्पादयन्ति।

राशय:	रोगा:
मेष:	पित्तज्वर:, दाह:, व्रण:, उष्णवायु:
वृष:	त्रिदोष: सन्निपात:, नपुंस्कत्वम्, अग्निदाह:
मिथुन:	कास:, दमा, कर्णशूल:, अरुचि:, कामरोग:।
कर्क:	उन्माद:, वातरोग:, अरूचि:, जलोदर:।
सिंह:	ज्वर: स्फोट:, अरूचि:, जलोदर:।
कन्या	गुप्तरोग:, स्त्रीसंसर्गजन्यरोग:, गर्भाशयविकार:
तुला	धीज्वर: सन्निपात:, प्रमेह:।
वृश्चिक:	प्लीहा, तिल्ली, संग्रहणी, पाण्डुरोग:।
धनु:	आन्त्रविकार:, उच्चस्थानात् पतनम्।
मकर:	उदरशूल:, अरुचि:।
कुम्भ:	कास:, ज्वर:, वय:।
मीन:	जलोदर:, कफ:, शीतविकार:।

कुण्डल्यां षष्ठो भावो रोगस्य भवति। अत: षष्ठेशो रोगप्रदो भवति, स्वभावसिद्धमिदम्।

षष्ठेशोऽयं षष्ठस्थाने स्थित्वा स्वप्रकृत्यनुसारं रोगमुत्पादयति। यथा षष्ठस्थाने स्थित: षष्ठेश: चन्द्र: कफविकार- शीतज्वर-नेत्रविकारान् जनयति। किन्तु अन्यभावस्वामिना परिवर्तिते सति चन्द्रमा चतुर्थेशेन परिवर्तनमाप्नोति चेत्तदा मातृकष्टप्रदायक: मानसिकरोग-समुत्पादकश्च भवति। अष्टमेशेन सह व्यत्यये सति गुप्तरोगं जनयति। यद्यन्यत्र चन्द्रोऽयं दु:स्थानेषु सूर्यादिग्रहै: सह भवेत्तदा तु शरीरस्य विभिन्नाङ्गेषु व्रणघातादिरोगान् सूचयति। उक्तमपि बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे -

तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम्।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु॥
गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शनिना, राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्॥[1]

यथा-

षष्ठेशस्य ग्रहेण युतिः	**रोगाधिकरणशरीरावयवा:**
यदि षष्ठेश: सूर्येण सह भवति चेत्	शिरसि व्रण:
चन्द्रयुत: षष्ठेशश्चेत्	मुखे व्रण:
भौमयुतश्चेत्	कण्ठे व्रण:
बुधयुतश्चेत्	नाभौ
गुरुणा सह चेत्	नासिकायाम्
शुक्रेण युत: षष्ठेशश्चेत्	नेत्रयो:
शनियुत: षष्ठेशश्चेत्	पादयो:
राहुकेतुभ्यां सह यदि षष्ठेश:	कुक्षौ

षष्ठ्यंशोपरि सूर्यादिग्रहाणां दृष्ट्योपरोक्तेष्वङ्गेषु व्रणादीनां ज्ञानं प्राप्यते।

अष्टमव्ययभावयो: स्वामित्वम् -

अष्टमो भावो आयुष: उत वा नाशस्य भावत्वाच्छरीरस्य स्वास्थ्यस्य च नाशको भवति। व्ययभावो लग्नतो द्वादशक्रमत्वे सति स्वास्थ्यह्रासस्य द्योतको भवति। अतो भावयोरनयो: तथा च अष्टमव्ययभावयो: स्थितराशय: रोगसूचका: भवन्ति। परिणामत अनयो: भावयो: स्थिता: ग्रहा: राशयो वा रोगकारका: भवन्ति। होराशास्त्रस्याचार्यै: अनयो: अष्टमव्ययभावयो: विलक्षणत्वात् कश्चन नियम: प्रतिपादित: यत् सर्वेऽपि ग्रहा: ये अष्टमव्ययस्थानयो: अधिपतय: भवन्ति ते नेष्टा: कथ्यन्ते।

कुण्डल्यां षष्ठेशमतिरिक्य अष्टमेश-व्ययेशावपि रोगकारकौ स्तः। यतो ग्रन्थेषु मतान्तरेऽष्टमेशो मृत्युकारको व्ययेशश्च हानिकारकः इति स्वीकृतम्। मृत्युः महारोगो वर्तते, तथा च स्वास्थ्यहानिः प्रत्यक्षं रोगानुत्पादयति। हेतुनानेनैव चाष्टमेशव्ययेशौ रोगकारकौ प्रथितौ। अत्रेदं ज्ञातव्यं यत् मङ्गलशनिसदृशाः पापिनो ग्रहाः यद्यष्टमेश- व्ययेशयोरधिपतयस्स्युस्तर्हि ते यं भावं राशिं च स्वकीययुतिदष्टिभ्यां प्रभावयन्ति तत्सम्बन्धिष्वङ्गेष्वेव रोगोत्पत्तिं सूचयन्ति।

यदि च शुभग्रहाः अष्टमेशव्ययेशयोः स्वामिनौ भवतश्चेत् स्वकीययुतिना दृष्ट्या च साधारणमल्पकालीनरोगाणां सूचनां यच्छन्ति। अस्मिन्नेव प्रसङ्गे महत्त्वपूर्णं तथ्यमिदमप्यस्ति यत् कोऽपि ग्रहो यद्यष्टमेशेन साकं लग्नेशो भवेत्, उत वा सूर्यचन्द्रौ लग्नेशौ भवेताम्, अथवा व्ययेशत्रिकोणेशौ वा स्याताम्, सूर्यचन्द्रौ व्ययेशौ भूत्वा त्रिकोणेशेन सह सम्बन्धं स्थापयेताञ्च तर्हि तौ रोगकारकौ न भवतः। प्रतिपादितञ्च लघुपाराशरीग्रन्थे -

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः

स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्॥

रोगभावेषु ग्रहाणां स्थितिः

षष्ठाष्टमद्वादशस्थानानि त्रिकस्थानमिति कथ्यन्ते। अत्र षष्ठस्थानं रोगस्य अष्टमस्थानं आयुषः द्वादशश्च स्वास्थ्यह्रासकारकमिति स्वीकर्तव्यम्। अत एव ज्योतिषाचार्यैः 'त्रिकस्थानमथवा तत्सम्बद्धराशिभावा अनिष्टकारकाः रोगकारकाः' इत्युक्तम्।

दुःस्थाने वाऽरिगे मूढ़े दुर्बले भावनायके।

भावस्य सम्पदं कर्तुं न शक्ता भावमाश्रिताः॥

दुष्टस्थितो वाऽपि यदा नभोगः पापोऽरिनीचांशक संयुतो यः॥[2]

सारांशोऽयम् -

(क) यस्य राशेर्भावस्य वा स्वामी त्रिकस्थाने स्यात्।

(ख) यस्य राशेर्भावस्याधिपतिः त्रिकेशेन युतः स्यात्।

(ग) यस्मिन् राशौ भावे वा त्रिकेशः स्थितः तत्सम्बन्धितेष्वङ्गेषु विकारो भवति।

षष्ठभावे स्थिताः ग्रहा अपि रोगकारकाः भवन्ति। तथैव अष्टम द्वादशभावयोः स्थिताः ग्रहाः अपि रोगकारकाः भवन्ति। ते ग्रहाः यस्य भावस्य राशेर्वा स्वामिनो भवन्ति, भावाः राशयश्च ते येषामङ्गानां प्रतिनिधित्वं कुर्वन्ति, तेष्वेवाङ्गेषु षष्ठाष्टमद्वादशभावस्थिताः ग्रहाः रोगान् सूचयन्ति।

अत्रेदं स्मरणीयं यदयं ग्रहो यदा पापप्रभावे भवति तदा रोगमुत्पादयति न वा। यतोहि कस्यापि भावस्य स्वामी ६, ७, १२ भावेषु स्थित्वा तस्य भावस्य शुभफलं नाशयति। उक्तमपि जातकपारिजातग्रन्थे-

यद्भावनाथो रिपुरिष्फरन्ध्रे दु:स्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।

तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञा: शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात्॥[3]

षष्ठभाव: शारीरिकवृद्ध्यवरोधकात् स्वास्थ्यावरोधकत्वाच्च रोगकारकमिति मन्यते। उदाहरणं यथा सर्वार्थचिन्तामणौ -

सुतेशे रिपुभावस्थे कारके रविसंयुते।

गर्भस्रावयुता भार्या जायते च मृतप्रजा॥[4]

अर्थाद् यदा पञ्चमेश: षष्ठे भावे पुत्रकारकगुरुणा सूर्येण सह च भवेत् तदा जातकस्य भार्याया: गर्भस्रावो भवति, मृतसन्ततिर्वा भवति। एतेन स्पष्टमेवास्ति यत् सन्ततिकारक: षष्ठेशभावाधिपतिश्चोभौ पापप्रभावे यदि भवत: तर्हि गर्भस्य विकासो न सम्भवति। अत: उक्तनियमानुसारं पञ्चमभावस्य शुभफलक्षयाच्छिशोर्मृत्यु: गर्भस्रावो वा स्वाभाविक एव।

सति लग्नाधिपे लग्नस्था: ग्रहा:

फलितशास्त्रे लग्न: स्वास्थ्यस्य समग्रशरीरस्य च प्रतिनिधित्वं करोति। अत एव लग्ने लग्नेशे वा पापप्रभावो शरीराय न श्रेयस्कर:। लग्नोऽयं स्वस्यैव बोधको भवति, अस्मादेव यदा कोऽपि ग्रह: लग्ने स्थितो भवति तदा स: स्वकीय-अस्थि-इत्यादिधातूनां पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्वं करोति। यथा -

लग्नस्था: ग्रहा:	धातव:
सूर्य:	अस्थि
चन्द्र:	रक्त: (रुधिर:)
भौम:	मांसम् (मज्जा)
बुध:	त्वक् (त्वचा)
गुरु:	मेद:
शुक्र:	वीर्यम्
शनि:	स्नायु:

सिद्धान्तममुमुदाहरणेनावगन्तुं शक्यते यच्छुक्रो यदा लग्नमतिरिच्यान्य- भावेषु पापप्रभावितो भवति, तदा वीर्यरोगस्य सम्भावना भवति परं निश्चितमिति तु न। तदेव शुक्रो लग्नस्थो यदि भवेत् तर्हि शुक्रस्य शरीरेण सह स्थिर-सम्बन्धात् वीर्यस्य पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्वं वहति। तदनन्तरं पापप्रभावात् वीर्यविकारमुत्पादयति स:।

सूर्यादिग्रहा: येषामङ्गानां तत्त्वानां धातूनाञ्च प्रतिनिधित्वं कुर्वन्ति लग्नेशे सति ते सूर्यादिग्रहा: तेषां तत्त्वानां धात्वादीनाञ्च प्रतिनिधयो भवन्ति। यथा - सूर्य: नेत्रयो:, हृदयस्य, अस्थिनश्च कारको

भवति, यद्ययं लग्नेशो भवति तर्ह्यस्थिनो विशेषरूपेण प्रतिनिधित्वङ्करिष्यति। यतोहि शरीरेऽस्थीनि हृदयनेत्रापेक्षया व्यापकरूपेण वर्तन्ते।

ग्रहाः	सति लग्नेशे धातवः	असति लग्नेशे धातवः
सूर्यः	अस्थिः	नेत्रे, हृदयम्, अस्थिः
चन्द्रः	रक्तः	मनः, रुधिरम्
भौमः	मांसं (मज्जा)	मांसं, मज्जा
बुधः	त्वक् (त्वचा)	वाणी, श्रवणशक्तिः, त्वचा
गुरुः	मेदः	उदरं, वसा, हृदयम्
शुक्रः	वीर्यम्	नेत्रं, मूत्रं, वीर्यम्
शनिः	स्नायुः	पादौ, स्नायुः

लग्नाधिपाः निर्बलाः पापाक्रान्ताश्चेत् तदा सम्भावितरोगाः-

सूर्यादिग्रहा लग्नेशे सति यदि निर्बलाः पापप्रभावा वा स्युस्तर्हि स्वकीय- प्रतिनिधित्वानुसारं निश्चितरूपेण रोगानुत्पादयन्ति। यथोक्तं पदावल्याम्-

लग्नेशस्य नीचराशिस्थत्वमपि रोगसूचकं भवति। यतो हि लग्नेशो शरीरस्य प्रतिनिधिर्भवति, तथा च लग्नेशस्य नीचस्थत्वं दौर्बल्यं सूचयति। अनेन स्पष्टं परिस्फुटति यद् नीचराशिस्थलग्नेशे पापप्रभावादेव रोगा उत्पद्यन्ते, उत वा शरीराङ्गेषु धातुषु च दौर्बल्यं भवति।

ग्रहाणां निर्बलत्वे सति रोगाः -

ग्रहाः	रोगाः
सूर्यः	अस्थिज्वरः, अस्थिभञ्जनं, आत्मबलहीनत्वं दौर्बल्यञ्च, नेत्रविकारः।
चन्द्रः	नेत्ररोगः, रक्तविकारः, रक्तस्रावः, रक्तचापः,उन्मादरोगः।
भौमः	कृशता, मज्जाजन्यरोगः, आघातः।
बुधः	दद्रुरोगः, वाग्दोषः, पामानरोगः, चर्मरोगः, कुष्ठरोगः।
गुरुः	स्थूलता, वीर्यविकारः, धातुक्षयः, मेदोवृद्धिः।
शुक्रः	प्रमेहः, मधुमेहः, वीर्यविकारः, धातुक्षयः, वृक्करोगः।
शनिः	गुल्मः, पक्षाघातः, स्नायुदुर्बलता, सन्धिवातरोगः।

लग्नेशो यदा नीचराशौ स्थितस्तदा जायमानाः रोगाः -

नीचराशिस्थलग्नेशाः	नीचराशयः	रोगाः
सूर्यः (सिंहलग्नाधिपः)	तुला	कर्णरोगः
चन्द्रः (कर्कलग्नाधिपतिः)	वृश्चिकः	जलोदररोगः
भौमः (मेषलग्नाधिपतिः)	कर्कटः	हृद्रोगः, फुफ्फुसविकारः
भौमः (वृश्चिकलग्नाधिपतिः)	कर्कटः	नितम्बोरूभागेषु व्रणः
बुधः (मिथुनलग्नाधिपतिः)	मीनः	जानुपीड़ा
बुधः (कन्यालग्नाधिपतिः)	मीनः	मूत्ररोगः, जननेन्द्रियरोगः
गुरुः (मीनलग्नाधिपतिः)	मकरः	मुखरोगः गुरुः धनुलग्नाधिपः मुखरोगः
गुरुः (धनुलग्नाधिपः)	मकरः	कर्णरोगः (गुरुः मीनलग्नाधिपः) कर्णरोगः
शुक्रः (वृषलग्नाधिपः)	कन्या	उदरविकारः
शुक्रः (तुलालग्नाधिपः)	कन्या	नेत्ररोगः
शनिः (मकरलग्नाधिपः)	मेषः	हृच्छूलरोगः
शनिः (कुम्भलग्नाधिपः)	मेषः	कण्ठरोगः, श्वासनलिकाविकारः

नीचराशिस्थशत्रुराशिस्थ-ग्रहाणां स्थितिः

नीचराशिस्थत्वात् शत्रुराशिस्थत्वाच्च निर्बलाः ग्रहाः शरीरे स्वकीय-धातोः अभावं सूचयन्ति। तथा सः नीचस्थः शत्रुराशिस्थो वा निर्बलो ग्रहो यस्याङ्गस्य प्रतिनिधित्वङ्करोति तदङ्गस्य विकासाभावं सूचयति। परिणामत अस्यामवस्थायां कदाचित् ग्रहाः धात्वल्पतासूचनाद् अङ्गवृद्धिराहित्य सूचनाच्च रोगकारकाः अपि कथ्यन्ते।

नीच-राशिगतशत्रुराशिगता उत वा निर्बलाः ग्रहाः रोगाश्च

ग्रहाः	रोगाः
सूर्यः	पित्तज्वरः, दाहः, नेत्रपीड़ा, हृदयदौर्बल्यम्।
चन्द्रः	रक्तविकारः, शीतज्वरः, कफः, जलोदरोन्मादश्च।
भौमः	दाहः, आघातः, गुप्तरोगः, रक्तस्रावः।
बुधः	त्रिदोषाः, चर्मरोगः, कर्णरोगः, वाग्दोषः।
गुरुः	शोथरोगः, कटिपादयोः पीड़ा।
शुक्रः	प्रमेहः, मूत्ररोगः, वीर्यविकारः, नेत्रविकारः
शनिः	स्नायुविकारः, वायुविकारः, सन्धिवातरोगः

ग्रहाणामवरोहित्वम्

यो ग्रहः भवेत् परमोच्चात्परं परमनीचात् पूर्वम् अर्थात् परमोच्चपरमनीचयोर्मध्ये षट्सु राशिषु कुत्रापि भवेत् स च क्रमोऽवरोहिक्रमो तस्य ग्रहस्य कथ्यते। अवरोहिक्रमयुतस्य- ग्रहस्य दशा अवरोहिणीदशा कथ्यते। प्रत्येकं ग्रहस्यावरोहिणी दशा सामान्यतया रोगकारिणी भवति। उक्तञ्च बृहज्जातके वराहमिहिरेण -

भ्रष्टस्य तुङ्गादवरोहिसञ्ज्ञा मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा॥[5]

इदमस्ति तात्पर्यं यत् परमोच्चात्तुङ्गात् भ्रष्टस्य च्युतस्यावरोहिणी संज्ञा भवति। अवरोहिणीति दशायाः नाम। 'दशपरमोच्चभागादारभ्य परमनीचभागादि' अत्रान्तरे राशिस्थितेन ग्रहेण या दत्ता दशान्तर्दशा सावरोहिणी संज्ञेति। कथ्यते यस्मात् परमोच्चात् प्रत्यहमधोऽवरतीति विकल्प्यते। यावत् परमनीचमित्यस्यावरोही संज्ञा दशाऽधमफला भवतीत्यधोऽभ्युपेयः। 'मन्त्रानुरूपाणि फलान्यथैषाम्' इति। उक्तमपि गार्गिणा -

उच्चनीचारन्तरस्थस्य दशा स्यादवरोहिणी।
तस्यामधमवाप्नोति फलं क्लेशाच्छुभं नरः॥[6]

राशिसन्धिगतग्रहाः

राशिसन्धिगतग्रहाः मारकाः भवन्तीति होराशास्त्रमर्मज्ञाः स्वीकुर्वन्ति।

कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः।
गण्डान्तरालं स्याद्घ्येकार्द्धं चैव मृतिप्रदम्॥[7]

अतः राशिसन्धिगतग्रहाः अपि स्वदशान्तर्दशासु रोगप्रदायकाः भवन्ति। ऋषिनारदेन समुक्तमस्ति यत्कर्कसिंहयोः वृश्चिक-धन्वोः, मीनमेषयोश्च मध्ये सार्धत्रिघटिकात्मकं गण्डान्तरालं मृतिदम्भवति।

पापग्रहाणां प्रभावः

लग्नेशः पापग्रहयुतः पापग्रहदृष्टः पापग्रहाक्रान्तश्च यदा भवति तदा पापग्रहप्रभावः कथ्यते। यस्मिन् भावे, यः स्वामिग्रहः पापग्रहैः प्रभावितो भवति, सः ग्रहः स्वराशिसम्बद्धाङ्गेषु विकारं रोगञ्च सूचयति।

ग्रहाणामरिष्टकारकत्वं मारकत्वञ्च

बाल्यकाले अकालमृत्युसूचको योगो बलारिष्टयोगः कथ्यते। इमे बलारिष्टयोगाः बालानां रोगसूचकाः भवन्ति। यद्यरिष्टयोगो भङ्गश्चेत् तर्हि तेन योगेन बालरोगास्तु भवन्ति, परं तेषां जीवनन्तु सुरक्षितमेव भवत्यर्थाद् अकालमृत्युर्न भवति भङ्गत्वादरिष्टयोगस्य। एवञ्चारिष्टयोगस्य भङ्गत्वे जाताः

बालरोगा: चिकित्सया शमयितुं शक्यन्ते। बाल्यावस्थायामरिष्ट-योगस्य भङ्गत्वाभावे तु मृत्युर्भवतीति विज्ञेयम्।

होराशास्त्रे मुख्यरूपेण त्रीणि कुलानि, १. पराशर: २. जैमिनी ३. वराहमिहिरश्च। तत्र पाराशरमतानुसारं द्वितीयेश: सप्तमेशश्च ग्रहो मारको भवति। मतमिदं फलितज्योतिषे सर्वसम्मतमस्ति।

जैमिनिमतानुसारं - ब्रह्मछिद्ररुद्रशूलग्रहा: मारका: कथ्यन्ते। वराहमिहिर:- अष्टमस्थानं मारकमिति स्वीकरोति। अत एवेदं स्थानं मृत्युभाव: कथ्यते।[8]

मारका: / अरिष्टकारका: ग्रहा:	**रोगा:**
सूर्य:	अग्निदाह:, उष्णदाह:, उष्णज्वर:, पित्तक्षोभ: मस्तिष्कापघात:।
चन्द्र:	विसूचिका जलोदर: तपेदिकम्, निम्नरक्तचाप:।
भौम:	दाह:, दुर्घटना, रक्तविकार:, अर्श:।
बुध:	पाण्डु:, भ्रान्ति:, यकृत्, त्रिदोष:।
गुरु:	कफरोग:, किन्तु मृत्युकाले कष्टं न भवति।
शुक्र:	प्रमेह:, मधुमेह:, वीर्यविकार:, मूत्ररोग:।
शनि:	सन्निपात:, पक्षाघात:, कर्कटरोग:।
राहु:	कुष्ठरोग:, विषजकीटाणुजन्यरोगा:।
केतु:	दुर्घटना, हृद्गतिरोध:।

यतो हि मृत्युरेको महायोगो वर्तते अतो मारको बालारिष्टकारको ग्रहो रोगकारको भवति। आचार्यमन्त्रेश्वरानुसारं सूर्यादिग्रहा: अरिष्टकारका: मारका वा स्युश्चेन्निम्नलिखितरोगैर्मृत्युं प्रददति। उक्तञ्च फलदीपिकायाम्-

अग्न्युष्णज्वरपित्तशस्त्रजमिनश्चन्द्रो विषूच्यम्बुरुग्यक्ष्मादि
क्षितिजोऽसृजा च दहनक्षुद्राभिचारायुधै:।
पाण्ड्वादि भ्रमजं बुधो गुरुरनायासेन मृत्युं कफात्
स्त्रीसङ्गोत्थरुजं कविस्तु मरुता वा सन्निपातै: शनि।
कुष्ठेन वा कृत्रिमभक्षणाद्वा राहुर्विषाद्वाथ मसूरिकाद्यै:।
कुर्याच्छिखी दुर्मरणं नराणां रिपोर्विरोधादपि कीटकाद्यै:।।[9]

अष्टमं स्थानं मृत्युस्थानमिति कथ्यते। अस्मिन् स्थितो ग्रहो यदा पापप्रभावयुक्तो भवति तदा

सोऽपि मारकः कथ्यते। जातकपारिजातग्रन्थे मारकग्रहाणां विभिन्नस्थितिषु मृत्युयोगानां प्रसङ्गे तेषां कारणेनोत्पत्स्यमानाः रोगाः इत्थं वर्णिताः -

योगाः	**मृत्योः कारणानि**
क) सूर्यभौमौ निर्बलौ मारकौ च भवेताम्, धनस्थाने पापग्रहो भवेत्।	पित्तरोगान्मृतिः
ख) गुरुचन्द्रौ निर्बलौ मारकौ च भवेताम्, पापसन्दृष्टे जलराशिगते चन्द्रे अष्टमस्थे गुरौ च।	क्षयरोगान्मृतिः
ग) पापग्रहसन्दृष्टे बुधे सूर्यराशिगते सति	त्रिदोषान्मृतिः
ग) पापग्रहसन्दृष्टे शुक्रे अष्टमस्थे सति	वातरोगः, प्रमेहः, क्षयः।
घ) अष्टमस्थो राहुः पापसन्दृष्टश्चेत्	मसूरिका, सर्पदंशः, पिटकाद्युष्णता-जन्यरोगान्मृतिः।
ङ) केतुः अष्टमे पापदृष्टः	मसूरिका-पित्तरोगान्मृतिः।

जातकपारिजातके यथा -

रन्ध्रस्थानगते सूर्ये भौमे वा बलवर्जिते।
वित्ते पापग्रहैर्युक्तं पित्तरोगान्मृतिं वदेत्॥
जलराशिगते चन्द्रे चाष्टमस्थेऽथवा गुरौ।
पापग्रहेण संदृष्टे क्षयरोगान्मृतिं वदेत्॥
अष्टमस्थानगे शुक्रे पापग्रहनिरीक्षिते।
वातरोगात्क्षयाद्वाऽपि प्रमेहाद्वा मृतिं वदेत्॥
सूर्यस्थानगते सौम्ये पापग्रहनिरीक्षिते।
त्रिदोषान्मरणं विन्द्याज् ज्वररोगेण वा वदेत्॥
मृत्युस्थानगते राहौ पापग्रहनिरीक्षिते।
पिटकाद्युष्णरोगाद्वा सर्वदोषान्मृतिर्भवेत्।
पराभवगते राहौ पापग्रहनिरीक्षिते।
मसूरिकादिरोगाद्वा पित्तभ्रंशान्मृतिं वदेत्॥[10]

अर्थाद् अष्टमस्थाने पापग्रहदृष्टो राहुर्भवेत्तर्हि व्रणादिरोगैः मसूरिकादिरोगेण सर्पदंशेन वा मृत्युः

भवति। यदि राहुः अष्टमे स्थाने पापग्रहनिरीक्षितो भवति तदा पित्तकुपितत्वान्मृत्युः।

पापग्रहाणां मध्ये स्थितिः (उत वा पापकर्त्तरीयोगः)

यो भावो राशिर्वा द्वयोः पापग्रहयोराभ्यन्तरे भवति स च राशिः यस्याङ्गस्य प्रतिनिधित्वं करोति, पापप्रभाववशात्तस्मिन्नङ्गे विकारं सूचयति। यदि भावाद् राशेर्वा द्वादशस्थाने स्थितपापग्रहः मार्गी द्वितीयस्थाने स्थितः वक्री भवति तर्हि सः योगः **'पापकर्त्तरी'** योगोऽभिधीयते। अस्मिन् पापकर्तरीयोगेऽनुलोमविलोमगत्या प्रचलमानानां पापग्रहाणां कर्त्तरी तयोः राशिभावयोः सम्बद्धाङ्गानां स्वास्थ्यं विकासञ्च छिन्नभिन्नं करोति।

भावाधीशे च भावे सति बलरहिते च ग्रहे कारकाख्ये
पापान्तःस्थे च पापैररिभिरपि समेतेक्षिते नान्यखेटैः।
पापैस्तद्बन्धुमृत्युव्ययभवनगतैस्तत्त्रिकोणस्थितैर्वा
वाच्या तद्भावहानिः स्फुटमिह भवति द्वित्रिसंवादभावात्॥[11]

पापग्रहाणां युतिर्दृष्टिर्वा

पापग्रहाणां युतिर्दृष्टिर्वा पापप्रभावः कथ्यते। अयं पापप्रभावो रोगोत्पत्तेः प्रमुखं कारणं भवति। कारणमिदं यद्यो भावो शुभग्रहैर्युतो दृष्टो वा भवति तस्य फलं पूर्णरूपेण प्राप्यते। यश्च भावः पापग्रहैर्युतो दृष्टो भवति तस्य फलह्रासो भवति।

यद्भावनाथो रिपुरिष्फरन्ध्रे दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात्॥[12]

अस्मादेव यत्र राशौ भावे पापग्रहः स्थितो भवति उत वा पापग्रहस्य दृष्टिर्भवति ते राशिभावाः यस्याङ्गस्य प्रतिनिधित्वं कुर्वन्ति तत्राङ्गे पापप्रभावाद् विकारं सूचयन्ति।

होरोत्तमाङ्गसंस्थादक्षिणवामावनागतातीतौ।
कर्णाक्षिनासिकापुटकपोलहनवोथ वक्त्रा।
ग्रीवांसभुजौ पार्श्वे पृष्ठे हृदयोदरे कटिश्चान्त्या।
नाभिर्वस्तिगुदाण्डा मुष्का पूर्वादयो द्वौ द्वौ॥[13]

राशिभावस्वामिनाम् अनिष्टस्थाने स्थितिः

यदा कस्यचिद् राशेर्भावस्य वा स्वामी त्रिकस्थाने स्थितः स्यात् तदा सः स्वसम्बन्धितशरीराङ्गे रोगमुत्पादयति तथैव यदि अनिष्टस्थानाधिपानाञ्च स्थितिरप्यनिष्टस्थानेष्वेव स्यात् तदा सोऽपि रोगकारको भवति **'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात् तस्य-तस्यास्ति वृद्धिः'** इत्युक्तत्वात्।

कुण्डल्यां स्थानानि द्विधा भवन्ति। १. इष्टस्थानानि २. अनिष्टस्थानानि। एतानि स्थानानि शुभग्रहाणां पापग्रहाणाञ्च भिन्नानि-भिन्नानि भवन्ति। शुभग्रहेभ्यः तृतीयषष्ठाष्टमद्वादशस्थानान्यनिष्टानि भवन्ति। तथा च पापग्रहेभ्यः तृतीयषष्ठैकादश-स्थानानि इष्टानि भवन्ति।

ग्रहाणामिष्टानिष्टभावाश्चोच्यन्ते। सौम्यानां-

व्ययमृत्युशत्रुसहजा नेष्टा अभीष्टाः परे।

भावेष्वेषु हि मुख्यता तु वपुषो धर्मात्मजौ तत्समौ

तेषु त्रिष्वधिकं शुभाशुभफलं विद्यात् सतां चासताम्॥[14]

अत एव कस्यामपि कुण्डल्यां तृतीयषष्ठाष्टमस्थानेषु स्थितान् शुभग्रहान् त्रिषडायञ्च अतिरिच्यान्यत्रस्थितपापग्रहाः अङ्गधातुदोषमाध्यमेन रोगोत्पत्तिं सूचयन्ति।

भावानां, राशीनां तथा चैतेषां स्वामिनां दौर्बल्यम्

यो भावो राशिश्च निर्बलो भवति, उत वा यस्य भावस्य राशेश्च स्वामी निर्बलो भवति चेत्, तत्सम्बन्धिशरीराङ्गेषु दौर्बल्यं रोगाश्च भवन्ति। अत्र कारणन्तु राशेः भावस्य भावेशस्य वा दुर्बलता, अतो तत्सम्बद्धाङ्गस्य विकासावरोधकत्वात् रोगकारकत्वमुपैति। तथा हि जातकपारिजाते -

सक्रूरो देहपो देहसौख्यहाऽन्त्यारिरन्ध्रगः।

सारीशे देहपे दुःस्थे लग्नस्थे वाऽथ रोगवान्॥

लग्ने सपापे लग्नेशे बलहीनोऽपि रोगवान्॥

देहेशस्थितराशीशे नाशगे दुर्बलो भवेत्।

भावेशाक्रान्तराशीशैर्दुःस्थैर्भावाश्च दुर्बलाः॥[15]

ग्रहाणामिष्टानिष्टप्रत्यायकश्लोकाः प्रश्नमार्गे यथा -

सौम्यानां व्ययमृत्युशत्रुसहजा नेष्टा अभीष्टापरे।

भावेष्वेषु हि मुख्यता तु वपुषो धर्मात्मजौ तत्समौ॥

तेषु त्रिष्वधिकं शुभाशुभफलं विद्यात् सतां चासताम्॥[16]

अर्थाच्छुभग्रहाणां द्वादशाष्टमषष्ठतृतीयाश्च भावाः नेष्टास्तथावशिष्टा इष्टभावाः भवन्ति। अथ च पापग्रहाणां षष्ठतृतीयैकादशभावा इष्टाः शेषाश्चानिष्टा इत्यभ्युपेयम्।

भावानां भावेशानां भावकारकानाञ्च दौर्बल्यसन्दर्भे प्रश्नमार्गग्रन्थे अधोलिखितरीत्या विश्लेषणं कृतमस्ति -

षष्ठाष्टमरिःफेशा भावपरिभवः शुभाश्च भावहनः।
भावतदीश्वरकारकदुर्बलता चास्ति तद्वदाप्तवचः॥
षष्ठं द्वादशमष्टमं च मुनयो भावानिष्टान् विदु-
स्तन्नाथान्वितवीक्षिता यदीश्वरास्त्रय इमे नश्यन्ति भावा नृणां
जाता वा विफला विनष्टविकलास्तत्रातिकष्टोष्टमः॥
भावाधीशे च भावे सति बलरहिते च ग्रहे कारकाख्ये
पापान्तस्थे च पापैररिभिरपि समेतेक्षिते नान्यखेटैः।
पापैस्तद्बन्धुमृत्युव्ययभवनगतैस्तत्त्रिकोणस्थितैर्वा।
वाच्या तद्भावहानिः स्फुटमिह भवति द्वित्रसंवादभावात्॥[17]

भावात् केन्द्रे त्रिकोणे वा त्रिकेशानां पापग्रहाणाञ्च स्थितिः

फलितज्योतिषाचार्याणां मतमस्ति यद् विचाराश्रयीभूत-भावात् १, ४, ७, १० स्थानेषु अथवा ५, ९ स्थानयोः यदि पापग्रहाः त्रिकेशाश्च स्युस्तर्हि विचाराश्रयीभूत-भावस्य फलह्रासो भवति। अतो यस्माद् भावात् केन्द्रे अथवा त्रिकोणे पापग्रहा त्रिकेशाः वा भवन्ति ते तत् भावसम्बन्ध्यङ्गेषु विकारं सूचयन्ति।

तत्तद्भावत्रिकोणे सुखमदनगृहे वाऽऽस्पदे सौम्ययुक्ते।
पापानां दृष्टिहीने भवनपसहिते पापखेटैरयुक्ते।
भावानां पुष्टिमाहुः सकलशुभकरं चान्यथा चेत्प्रणाशं
मिश्रं मिश्रग्रहेन्द्रैरखिलमपि तथा मूर्तिभावादिकानाम्॥[18]

रोगकारकग्रहैः सह सम्बन्धः

यस्य राशेः भावस्य वा रोगकारकग्रहैः सह सम्बन्धो भवति चेत् तत्सम्बन्ध्यङ्गेषु विकारं रोगञ्च जनयति। अत्रैव प्रश्नमार्गे वर्णितम् -

रोगार्तानामिह तु बहुधा कल्प्यते रोगहेतु-
र्भूतावेशाद्ग्रहगतिवशाद्वातपित्तादिकोपात्।
एतत्तथ्यं त्रिविधमुदितं प्रायशः स्वीयपाप्मा
रोगोत्पत्तेर्भवति हि नृणां हेतुरेकस्त्रिधा स्यात्॥[19]

अर्थोऽयं रुग्णजनेषु, रोगाणां विविधान हेतून् कल्पयति। यथा भूतावेशात् रोगाः जायन्ते, कदाचित् ग्रहाणां गतिवशात् वात्तपित्तकफादीनां विपर्ययाच्च रोगाः जायन्ते।

शुभग्रहाणां प्रभावाभावः

शुभग्रहाणां युतिः दृष्टिः **'शुभप्रभावः'** इत्यभिधीयते। यस्मिन् राशौ भावे च शुभग्रहाणां

युति:दृष्टिर्वा भवति, तद्राशिभावयोः सम्बन्ध्यङ्गानि पुष्टानि स्वस्थानि च भवन्ति।

भावाः सर्वे शुभपतियुता वीक्षिता वा शुभेशै-

स्तत्तद्भावाः सकलफलदाः पापदृग्योगहीनाः।

पापाः सर्वे भवनपतयश्चेदीहाहुस्तथैव

खेटैः सर्वैः शुभमपिफलं निम्नमूढातिहीनैः।।[20]

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्याभिवृद्धिः।

पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्विज्ञातव्या प्रश्नतो जन्मतो वा।[21]

अतो यस्मिन् राशौ भावे वा शुभप्रभावाभावो भवति तत्सम्बन्ध्यङ्गेषु रोगोत्पत्तिर्भवतीति।

1 बृ. होराशास्त्र अ. 97 श्लो. सं.-6
2 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. सं.-8-9
3 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. सं.-4
4 सर्वार्थचिन्तामणि: अ. 5 श्लो. सं.-17
5 बृहज्जातकम् अध्याय: 8 श्लो. सं.-6
6 बृहज्जातकम् अध्याय: 3
7 वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 39 प्रकरणं श्लो. सं. 31
8 बृहज्जातकेऽष्टमाध्याये।
9 फलदीपिका अध्याय: 14 श्लो. सं.-14-15
10 जातकपारिजाते आयुर्दायाध्याये श्लोक सं.- 87-92
11 फलदीपिका भावचिन्ताध्याय: श्लो. सं.-6
12 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. 4
13 प्रश्नमार्ग: अ. 12 श्लो. 83-84
14 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. सं.-6
15 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. सं.-33-35
16 प्रश्नमार्ग अध्याय-14, श्लो. सं-44
17 प्रश्नमार्ग अध्याय-14, श्लो. सं-28-30
18 जातकपारिजात: अ. 11 श्लो. सं.-6
19 प्रश्नमार्ग: अ. 13 श्लो. सं.-30
20 सर्वार्थचिन्तामणि: द्वितीयोऽध्याय: श्लो. सं.-2
21 प्रश्नमार्ग अ. 14 श्लो. सं. 25

नेत्र रोग एक ज्योतिषीयदृष्टिकोण

डॉ. भारतभूषण मिश्र

भारतीय जनमानस की विचारशीलता को देखा जाय तो हम पाते हैं कि प्रत्येक जीव काल के महत्त्व को अपने अनुसार अनुपालन में तत्पर रहता है। कहने का आशय यह है कि केवल मनुष्य ही नहीं सभी जीव काल का अनुसरण करते हैं, किन्तु काल परिवर्तन क्रम के आधार पर कार्य की विविधता भी देखी जा सकती है। काल के नियामक ग्रह सूर्य और चन्द्रमा को माना जाता है और उनके परिवर्तन से काल में अन्तर होता है, क्योंकि अगर इनमें परिवर्तन नहीं हो तो एक समान काल की गति स्थिर हो जायेगी इसी कारण आचार्यों का मानना है कि–

चक्रवत् परिवर्तेत कालः सूर्यवशात् सदा

अर्थात् यही कारण स्वीकार किया जा सकता है जिसमें वर्ष, अयन, ऋतु, मास आदि के अवयव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। तथा आकाश में रहने वाले विचरण करने वाले ग्रहों एवं नक्षत्रों की शुभाशुभ रश्मियों के साहचर्य से शीत, उष्ण, सुभिक्ष–दुर्भिक्ष आदि प्रभाव जनित फल का बोध सभी को प्राप्त भी होता है। इन्हीं सम्भावनाओं के आधार पर हमारे ऋषियों ने पञ्चाङ्ग के निर्माण की आवश्यकता समझी होगी, जिसके आधार पर हमारा समाज अपने शुभाशुभ के बारे में अन्वेषण करता रहेगा। कहा भी है।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणःपंक्तिम्।
व्यञ्जयतिशास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥[1]

अर्थात् काल गति को संचालित करने वाले ग्रह जिनका विवेचन आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थों में किया है उनकी सहायता से हम अपने जीवन के बारे में जानने का प्रयास करते हैं।

नेत्र रोग जो आज समाज के सभी वर्गों के लोग जानने की इच्छा रखते हैं। उसमें जन्मकुण्डली के द्वितीय और द्वादश भाव को मुख्यरूप से कारण माना जाता है। कुण्डली का द्वितीय भाव दाहिने नेत्र एवं द्वादश भाव बायें नेत्र का कारक मान कर उनमें स्थित ग्रहों की स्थिति के अनुसार हम विवेचना करने का प्रयास करते हैं। इतना ही नहीं कुण्डली के पञ्चम और नवम एवं षष्ठ और अष्टमभाव से भी नेत्र विकार के बारे में विश्लेषण किया जाता है। इसलिए जब कोई दैवज्ञ किसी जातक के लिए नेत्ररोग के विषय में विश्लेषण करने का प्रयास करें तो इन सभी भावों पर सूक्ष्म दृष्टि से जरूर ध्यान देना चाहिए। सूर्य और चन्द्रमा दोनों का प्रकाश हम अपने जीवन में महसूस करते हैं, और इनको नेत्रों का कारक भी माना जाता है। चूँकि सूर्य पुरुषग्रह है और चन्द्रमा स्त्रीग्रह इसलिए सूर्य पुरुष की दाहिनी आँख एवं स्त्री की बायीं आँख का कारक होता है और चन्द्रमा स्त्री

की दाहिनी आँख और पुरुष की बायीं आँख को अधिक प्रभावित करता है। नेत्ररोग प्रायः तीन श्रेणियों में विभक्त करके विचार करने की व्यवस्था हमारे शास्त्रों में प्राप्त होती है। इनमें अन्धत्व-काणत्व या भेंगापन, चेचक मनुष्य या किसी पशु के कारण तथा अवस्थाधिक्य एवं अस्थायी रोग सम्मिलित होते हैं। ये ग्रह केवल नेत्र विकार ही देते हैं ऐसा कदापि नहीं सोचा जा सकता अपितु सुन्दर नेत्र भी ग्रहों के प्रभाववश जाना जाता है। जैसे–लग्नभाव का स्वामी होकर गुरु-शुक्र के साथ केन्द्रवर्ती हो तो जातक सुन्दर नेत्र वाला होगा, वहीं द्वितीयेश व द्वादशेश ग्रह शुभग्रहों से युत-दृष्ट होकर शुभस्थान में स्थित हो तो भी जातक अच्छे नेत्रों वाला होता है। तथा बलवान सूर्य दशमभाव में हो या लग्न-द्वितीय भाव में गुरु और चन्द्रमा बली होकर बैठे हों और क्रूरग्रहों के प्रभाव से रहित हो तो भी जातक की आँखें अच्छी होती हैं। यथा–

लग्नाधिपे सौम्यखगेन युक्ते बलान्विते कारकखेचरेन्द्रे,
नेत्रे शुभे तद्भवनेश्वरो वा सौम्यान्वितः सौम्यदृशा समेतः॥[2]

नेत्ररोग में एक विशेष कारण सूर्य-चन्द्रमा के अन्धांश को भी माना जाता है, जो श्रुत परम्परा में इस प्रकार मिलता है यथा– वृष राशि में 6 से 10 अंश तक, मिथुन राशि में 9 से 15 अंश तक, कर्क राशि में 18, 27 एवं 28 अंश में, सिंह राशि के 18, 27 एवं 28वें अंश में, वृश्चिक राशि के 1, 10, 27 एवं 28वें अंश में, मकर राशि के 26 से 29 अंश तक, एवं कुम्भराशि के 8, 10, 18 एवं 19वें अंश में सूर्य एवं पूर्णचन्द्रमा का अन्धांश कहा गया है। यह अन्धांश की स्थिति दशमभाव स्पष्ट से चतुर्थभावस्पष्ट तक वाम चक्री एवं चतुर्थभावस्पष्ट से दशमभावस्पष्ट तक दक्षिणचक्रार्ध होता है। अन्धांश की स्थिति के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा वाम-दक्षिण चक्राध में स्थित होकर दाहिने एवं बायें नेत्र पर जातक के लिए अपना प्रभाव डालते हैं। यदि उक्त अन्धांश स्थित चन्द्रमा वाम चक्रार्ध में अवस्थित हो और दिन का जन्म हो तो जातक के दाहिने नेत्र पर और रात्रिकालीन जन्म हो तो बायें नेत्र पर रोग देने वाला होता है। सूर्य यदि दक्षिणचक्रार्ध में स्थित हो और दिन का जन्म हो तो जातक के दाहिनी आँख में और रात का जन्म हो तो बायीं आँख में कष्ट देने वाला होता है। यह ग्रहस्थिति जब किसी जातक की जन्मकुण्डली में दिखाई पड़ती हो और उस पर क्रूरग्रहों-पापग्रहों का प्रभाव दिखाई पड़े तो अवश्य ही स्थायी रोग देता है या व्यक्ति को काण बनाता है।

नेत्र विकार में वे ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सभी फलितग्रन्थ अपने-अपने अनुसार योगों का प्रतिपादन करते हैं। उनमें सूर्य के साथ शुक्र और लग्न का स्वामी त्रिक् भाव में स्थित हों तो जन्म से ही नेत्र विकार पैदा करने की स्थिति बनाता है। वहीं तृतीयभाव के स्वामी के साथ सूर्य और शुक्र तृतीय स्थान से छठे, आठवें वा बारहवें भाव में स्थित हो तो भी जन्म से ही नेत्र कष्ट का योग होता है।[3] यदि किसी जातक की जन्मकुण्डली में शुक्र और चन्द्रमा किसी पापग्रह के साथ द्वितीय भाव में स्थित हो और उस पर किसी अशुभ ग्रह की दृष्टि नहीं पड़ रही हो तो भी जातक नेत्र विकार जनित कष्ट से युक्त होता है।[4]

नेत्र सम्बन्धी कष्ट में और भी बहुत से कारण शास्त्रों में प्राप्त होते हैं। जैसे—लग्न में गुरू स्थित हो और सप्तमभाव में शनि की स्थिति दिखाई पड़े तो वातरोग के कारण नेत्र कष्ट होता है। वातरोग के द्वारा नेत्र कष्ट में यदि लग्न-द्वितीय-षष्ठ, अष्टम या द्वादशभाव में चन्द्रमा-शनि-मंगल और सूर्य की युति हो तो भी नेत्र विकार उक्त रोग के कारण होता है। वहीं सूर्य-मंगल-शनि-और चन्द्रमा द्वितीय-अष्टम-षष्ठ एवं द्वादश भाव में स्थित हो तो जातक धातुक्षीणता के कारण नेत्र कष्ट प्राप्त करता है। यदि किसी जातक की जन्मकुण्डली में शुक्र यदि पञ्चमेश अथवा अष्टमेश के साथ लग्नवर्ती हो तो वह किसी मनुष्य के द्वारा प्रहार के कारण नेत्र कष्ट प्राप्त करता है, तथा यदि दशमभाव का स्वामी षष्ठेश के साथ युत् होकर लग्न में शुक्र और द्वितीयेश के साथ अवस्थित हो तो राजदण्ड के कारण नेत्र कष्ट प्राप्त होने का योग बनता है। वहीं यदि किसी की कुण्डली में मीनराशि का लग्न हो और वह सूर्य की होरा में पड़ जाये तो दाहिने आँख में तथा चन्द्रमा की होरा में पड़ जाय तो बायें नेत्र में कष्ट देता है।

जातकतत्त्व में भी नेत्र रोग सम्बन्धी बहुत से योग वर्णित मिलते हैं—जिसमें लग्नेश यदि सूर्य और शुक्र के साथ छठे-आठवें एवं बारहवें भाव में स्थित हो, ग्रहण के समय जायमान की कुण्डली में सूर्य यदि लग्न में स्थित हो और शनि-मंगल त्रिकोणभाव में अवस्थित हो, एवं द्वितीय-द्वादश भाव का स्वामी शुक्र-सूर्य के साथ त्रिक्स्थ हो तो जातक नेत्रकष्ट से युक्त होता है। तथा चन्द्रमा यदि किसी जातक की कुण्डली में मंगल के साथ छठे-आठवें या बारहवें भाव में स्थित होकर पापग्रहों के प्रभाव से युक्त हो और शुभग्रह के प्रभाव से हीन हो तो जातक को नेत्र विकार होता है।[5] अन्धत्व के विवेचन में यह भी उल्लेख प्राप्त होता है, कि चन्द्रमा यदि शुक्र के साथ त्रिक्भाव में स्थित हो और क्रूरग्रहों के प्रभाव से युक्त हो तो जातक कामान्ध होता है। तथा चन्द्रमा-बुध के साथ होकर त्रिक् भाव में गया हुआ हो तो जातक शास्त्रान्ध होता है। इतना ही नहीं यदि किसी जातक की जन्मकुण्डली में मंगल यदि पापग्रह के प्रभाव से युक्त होकर पापग्रह की राशि में केन्द्र प्रथम-चतुर्थ-सप्तम एवं दशम भाव में से किसी भी भाव में अवस्थित हो तो नेत्र कष्ट का योग उत्पन्न करता है।[6]

नेत्र विकार का विश्लेषण करते समय दैवज्ञों को यह भी विचार करना आवश्यक है, कि जातक की आँखें पूर्णरूप से कार्य नहीं कर रहीं है या उनकी ज्योति का ह्रास हो रहा है, ऐसे में कुछ इस प्रकार के भी योग वर्णित मिलते हैं कि यदि लग्नेश तथा सूर्य व शुक्र अदृश्यचक्रार्ध में स्थित हो, द्वितीयेश तथा नेत्र-कारक ग्रह पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, या सूर्य-चन्द्रमा-बुध और शनि द्वादशभाव या मीन राशि में हो तथा मंगल मध्यस्थानीय हो, या अष्टमभाव में कोई पापग्रह हो तो जातक के नेत्र की ज्योति क्रमशः जाती रहती है। अथवा लग्नेश और द्वितीयेश दोनों ग्रह त्रिक्स्थ भाव में स्थित हो एवं सूर्य और चन्द्रमा सिंहलग्न में शनि-मंगल की दृष्टि से प्रभावित हो तो जातक के नेत्र की ज्योति क्षीण होती है।[7] जातकपारिजात में नेत्र विकार सम्बन्धी विवरण कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है कि यदि लग्नभाव का स्वामी लग्नेश, धनेश, सप्तमेश, नवमेश और

पञ्चमेश के साथ होकर त्रिक् भाव में अवस्थित हो और शुक्र का सम्बन्ध लग्न से बन जाय तो ऐसे योग में जातक नेत्र कष्ट से युक्त होता है। यथा–

विलग्नवित्त्द्यास्ततपः सुतेशा रिपुव्ययच्छिद्रगृहोपयाताः।
विलग्नसम्बन्धकरः सित श्चेद्विलोचनाभावमुपैति जातः॥[8]

प्रश्नमार्गनामक ग्रन्थ में नेत्र विकार के कारणों का विश्लेषण करते हुए आचार्य का मानना है कि जब मनुष्य अपने आचरण से च्युत होता है तो अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ उसके आसन्न आने लगती हैं। उसी क्रम में कृतघ्नता, छल से परस्त्री के प्रति आसक्ति एवं दूसरों को नेत्र कष्ट देने वालों को भी स्वयं के लिए नेत्र कष्ट की स्थिति बन जाती है। इस परिस्थिति को शान्त करने के लिए प्रश्नमार्ग में उपाचार भी बताया गया है, जैसे–मूँग, खीर, सोना, एवं घी आदि पदार्थों का दान और नेत्रोपनिषद्, चाक्षुषोपनिषत् की उपासना से जातक को लाभ प्राप्त होता है। यथा–

दृग्व्याधेस्तु कृतघ्नताऽन्यवनितासन्दर्शनं छद्मना,
चान्यस्याक्षिविनाशनं खलु नृणां हेतुस्तु तच्छान्तये।
मुद्गान्नस्य च पायसस्य कनकस्याज्यस्य पक्षीशितुः,
दानं वाम्बकरक्षकाणुहवनं जापोऽथवाऽस्य स्मृतः॥[9]

नेत्रविकार में एक रोग रतौंधी को भी माना जाता है। जिसमें जातक की जन्मकुण्डली में सप्तमभाव में पापग्रह से देखा जाता हुआ शुक्र-मंगल एक साथ स्थित हो तो रतौंधी का योग बनता है। यदि त्रिक्भाव में चन्द्रमा-शुक्र की युति हो, शुक्र-चन्द्र से द्वितीयेश या द्वादशेश लग्न में हो और पापग्रह से दृष्ट हो, यदि सिंह लग्न में सूर्य क्रूरग्रहों से प्रभावित हो, यदि किसी भी स्थान में द्वितीयेशग्रह के साथ शुक्र-चन्द्रमा की युति हो, सूर्य लग्नवर्ती हो तथा बुध त्रिक्भाव में बैठा हो, हीनबलवाला सूर्य वक्री ग्रह की राशि में बैठा हो, अथवा मंगल के प्रभाव से आक्रान्त चन्द्रमा कर्क राशि में बैठा, अथवा मंगल के प्रभाव से आक्रान्त चन्द्रमा कर्क राशि में हो या धनु के अन्तिम नवांश में हो और उस पर सूर्य की दृष्टि पड़ रही हो तो ऐसे योगों की स्थिति में जातक को नेत्र कष्ट से सम्बद्ध रहने का आसार देता है। यहीं यह भी देखने में आता है कि यदि किसी जातक की जन्म कुण्डली में शनि द्वादश भाव में स्थित हो तो जातक के दाहिने नेत्र में पीड़ा देने वाला होगा। सूर्य भी द्वादशस्थ होकर शुभ-प्रभाव से हीन हो तो पीड़ा देता है। वहीं मंगल यदि बारहवें भाव में हो तो बायीं आँख में कष्ट देता है यदि लग्न से बारहवें भाव में मीन राशि का सूर्य स्थित हो तो दाहिने नेत्र में और ऐसी ही स्थिति में चन्द्रमा अवस्थित हो तो बायें नेत्र में कष्ट उत्पन्न करता है। यदि शनि द्वितीय भाव में स्थित होकर शुभ ग्रहों के प्रभाव से दूर हो तो दाहिने नेत्र में चोट के कारण कष्ट उपस्थापित करता है और मंगल द्वादश भाव में शुभ ग्रहों से युत्-दृष्ट न हो तो बायीं आँख में चोट के कारण व्याधि बनाता है।

बृहत्पाराशर होराशास्त्र में भी नेत्र रोग के सम्बन्ध में विवरण मिलता है कि नेत्रेश यदि बली हो और शुभग्रहों के प्रभाव से युक्त हो तो जातक की आँखें सुन्दर होती हैं। वही नेत्रेश ग्रह यदि

त्रिक् भावस्थ हो या पापप्रभाव से सम्पन्न हो तो उसके नेत्र में विकार की प्रबल सम्भावनायें देखी जाती हैं। इतना ही नहीं द्वितीय स्थान यदि पापाक्रान्त हो तो उक्त कष्ट के साथ जातक कुटुम्ब के प्रति अरुचि रखने वाला, पिशुन, असत्यभाषी एवं वातरोग के प्रभाव से ग्रस्त होता है। यथा–

नेत्रेशे बलसंयुक्ते शोभनाक्षो भवेन्नरः।
षष्ठाऽष्टम-व्ययगते नेत्रे वैकल्यमादिशेत्॥
धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते।
असत्यवादी पिशुनो भवेद् वातरूजार्दितः॥[10]

कहने का आशय है कि नेत्र का विचार करते समय धन–द्वितीयभाव जिसे कुटुम्ब भाव भी कहा जाता है। उक्त भाव पर यदि शुभाशुभ ग्रहों का विश्लेषण ठीक से किया जाय तो स्वाभाविक रूप में होने वाले कष्ट से बचा जा सकता है। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कुटुम्ब के कारण भी नेत्र रोग हो सकता है इस सन्दर्भ में मेरा मानना है कि जब कुटुम्बेश पीड़ित होगा तो पारिवारिक कुफुत के कारण अनेक प्रकार की समस्यायें आती हैं, जिसके कारण नेत्र रोग होना भी सम्भव लगता है। ऐसी परिस्थिति में अशुभ ग्रहों के जप–दान से कुछ हद तक व्यक्ति को इन कष्टों से बचने में सहायता अवश्य मिलेगी।

जातकालंकार में भी नेत्रविकार से सम्बन्धित बहुत से योग प्राप्त होते हैं जिसमें सूर्य के साथ शुक्र और लग्नेश त्रिक् भाव में हो, द्वितीयेश एवं व्ययेश के साथ शुक्र एवं लग्नेश त्रिक् में हो, पापग्रह से युक्त शुक्र व चन्द्रमा का योग द्वितीय भाव में हो, लग्न स्थान से सप्तम भाव में मकर या कुम्भ राशि का सूर्य हो, चन्द्रमा एवं सूर्य का योग प्रथम–तृतीय–चतुर्थ–षष्ठ या दशम भाव में तथा बुध त्रिक्स्थ हो, द्वितीयेश, द्वादशेश और लग्नेश के साथ सूर्य त्रिक् भाव में अवस्थित हो, चन्द्र–मंगल या चन्द्र–गुरु का योग त्रिक् भाव में हो, अथवा त्रिक् भाव में क्रमशः शनि–चन्द्र एवं सूर्य हो या लग्न में सूर्य–चन्द्रमा एक साथ स्थित हो तो ये सभी योग नेत्र कष्ट देने वाले होते हैं। यथा–

स्वान्त्याधीशौ त्रिकस्थौ कवितनुपयुतौ स्यात्तदा नेत्रहीनः।
चन्द्रःपापेन युक्तो धनभवनगतः शुक्रयुङ् नेत्र हीनः॥[11]

जैमिनिसूत्र ग्रन्थ में भी नेत्र विकार के लक्षण को व्याख्यायित करते आचार्य का मानना है कि लग्न से पञ्चमस्थान के पद राशि में सूर्य से दृष्ट राहु हो तो नेत्र कष्ट जातक को होता है। यथा–

शुक्राद् गौणपादस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा॥[12]

अर्थात् किस प्रकार का नेत्र रोग होगा इनकी सम्भावनायें ग्रहों के गुणधर्म के अनुसार किया जाना चाहिये। और इन कष्टों के प्रभाव को जानने एवं इनसे छुटकारा पाने का प्रयास करने के लिए गोचर की ग्रह स्थिति का अनुसरण भी आवश्यक होता है। इस प्रकार ग्रहकृत दोष के प्रभाव से नेत्र कष्ट को दूर करने के लिए मणि, मन्त्र, औषधि, दान आदि का आश्रय लेकर इन कष्टों से

कुछ हद तक बचा जा सकता है।

सन्दर्भ-सूची

1. लघु जातक-पृष्ठ-2, अध्याय-1, श्लोक-3, सम्पादक-श्री वासुदेवः, सन्-1968, प्रकाशक-ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर राजादरवाजा कचौड़ी गली, वाराणसी।
2. जातकतत्त्व-पृष्ठ-126, जातकरत्न का वाक्य-प्रकीर्ण प्रथम विवेक, व्याख्याकार-प्रो. हरिशंकर पाठक, सन्-2000, प्रकाशक- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन के-37-117 गोपालमन्दिरलेन-वाराणसी
3. जातकतत्त्व-पृष्ठ-128-29 शम्भुहोरा प्रकाश का वचन, प्रकीर्ण प्रथम विवेक, व्याख्याकार-डॉ. हरिशंकर पाठक, सन्-2000, प्रकाशक- चौखम्भा सुरभारती प्रकाश के 37-117 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।
4. शुक्रेन्दुभ्यां संयुते नेत्रनाये निश्यन्धः स्यात् पापदृष्टे शुभैर्न।
   शुक्रार्कौ वा लग्नपेनैव युक्तौ पाताले वा रन्ध्रगे मध्यदृक्स्यात्।।
   जातकपारिजात- पृष्ठ-357, श्लोक- 65, अध्याय-11, टीकाकार- पं. कपिलेश्वर शास्त्री, सन् 1992, प्रकाशक-चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. जातकतत्त्व-पृष्ठ 130, श्लोक 241-244, प्रकीर्ण प्रथम विवेक, व्याख्याकार-डॉ. हरिशंकर पाठक सन् 2000, प्रकाशक-चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन के. 37-117 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।
6. जातकतत्त्व-पृष्ठ-130, श्लोक-246-249 प्रकीर्ण प्रथम विवेक- व्याख्याकार-डॉ. हरिशंकर पाठक, सन्-2000, प्रकाशक- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन के-37-117 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।
7. जातकतत्त्व-पृष्ठ-131 श्लोक-265-66, प्रकीर्ण प्रथम विवेक, व्याख्याकार-डॉ. हरिशंकर पाठक सन्-2000, प्रकाशक-चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन के-37-117 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।
8. जातकपारिजात-पृष्ठ-357, श्लोक-66, अध्याय-11, टीकाकार-पं. कपिलेश्वर शास्त्री, सन्-1992, प्रकाशक-चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
9. प्रश्नमार्ग भाग-2, पृष्ठ-448, श्लोक-11, अध्याय-23, सम्पादक-डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी, सन्-2002, प्रकाशक-रंजनपब्लिकेशन्स 16 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2
10. वृहत्पाराशरहोराशास्त्र-पृष्ठ-86, श्लोक-13714, अध्याय-14, सन्-1982, सम्पादक-पं. देवचन्द्र झा, प्रकाशक- चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
11. जातकालंकार-पृष्ठ-15, श्लोक-5, भावाध्याय, व्याख्याकार-पं. लषणलाल झा, सन्-1984 प्रकाशक-कृष्णदास अकादमी वाराणसी।
12. जैमिनीसूत्र-प्रथम अध्याय-तृतीयपाद, पृष्ठ-113, सूत्र-44, व्याख्याकार-पं. लषणलाल झा सन्-1986, प्रकाशक-चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन- वाराणसी।

भगवान सूर्य के द्वारा समस्त रोगों का उपचार वेद, वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में

प्रो. केदार प्रसाद परोहा

भारतीय जीवन के अन्तःस्थल में निरन्तर प्रवाहशील अजस्र स्रोत के रूप में वेदों का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेद हमारे अध्ययन और चिन्तन के ही नहीं अपितु जीवन के भी आधार हैं, क्योंकि वेदों के माध्यम से ही हमारी उदात्त संस्कृति का उदय एवं विकास हुआ, तथा विश्व के रंगमंच पर उच्चतम प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। वैदिक वाङ्मय को सभी समालोचकों ने प्राचीनतम साहित्य के रूप में स्वीकार किया है। वेदाध्ययन को परम पुरुषार्थ के रूप में अङ्गीकार करते हुए ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय भी बताया है।[१] वेद शब्द का तात्विक अर्थ है– "ज्ञान" ज्ञान वह प्रकाश है, जिसमें मनुष्य हृदय में अन्तुष्टम अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि का समस्त अन्धकार मिट जाता है, वेद को अखिल धर्मों का मूल माना गया है।[२] प्रारम्भ में मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए परमात्मा ने जिस ज्ञान का प्रकाश दिया, उसका ही नाम 'वेद' है।

यह ज्ञान हमें ऋचाओं-मन्त्रों के माध्यम से हुआ। इस ज्ञान को सम्यक् रूप से प्राप्त करने हेतु वेद के छः अङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष। वेदों के अर्थज्ञान के लिए ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद का वेद के छः उपाङ्गों सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त आदि शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक है। तब ही हम वेदार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

वेदाङ्गों में ज्योतिष अन्तिम वेदाङ्ग है। वेदाङ्ग ज्योतिष का वेदों से साक्षात् सम्बन्ध है, किन्तु ऋग्वेद एवं यजुर्वेद प्रमुख रूप से माने जाते हैं। इन्हें आर्च ज्योतिष तथा याजुष ज्योतिष के रूप में भी माना जाता है। ऋग्वेद की ३६ ऋचायें एवं यजुर्वेद की ४६ ऋचायें हैं, जिनमें ज्योतिष विद्या से सम्बन्धित चर्चा की गयी है। वेदाङ्ग ज्योतिष के मन्त्रों का रहस्य समझना आज भी विद्वानों के लिये विषम समस्या है। अनेक वर्षों से भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् इन मन्त्रों के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करते आ रहे हैं। ज्योतिष शास्त्र की प्राचीनता का अनुमान इस शास्त्र के सिद्धान्तों से लगाया जा सकता है। १. पितामह सिद्धान्त, २. वासिष्ठ सिद्धान्त, ३. रोमक सिद्धान्त, ४. पौलिश सिद्धान्त, ५. सूर्य सिद्धान्त।[3] इनके अतिरिक्त अन्यान्य सिद्धान्त भी प्रचलित हैं– पराशर,व्यास, गर्ग, नारदादि आचार्यों के संहिता ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में आर्य सिद्धान्त की गणना प्रमुख रूप से की जाती है, जिसके प्रवर्तक आर्यभट्ट हैं, आगे चलकर यह आर्यभटीय सिद्धान्त के नाम से प्रचलित है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र पुरातन काल से ही अपनी वैज्ञानिकता और तार्किकता के

कारण मनीषियों के अध्ययन की परिधि में रहा है। हमारे देश के ज्योतिर्विदों के आकाश स्थित नक्षत्रों, ग्रहों की गतिविधि एवं स्थितियों की गणना तथा ज्योतिष शास्त्र के अन्य सभी अङ्गों का विस्तारपूर्वक गम्भीरता से विश्लेषण किया है।

भगवान सूर्य चराचर जगत् की आत्मा है। सूर्य के बिना संसार के स्थिति के कल्पना ही नहीं की जा सकती है, भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, वे सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परमात्मा हैं। वेदों उपनिषदों में अनन्त महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। सभी धर्म किसी रूप में भगवान भुवन भास्कर सूर्य को मान्यता देते हैं। वेदों में इन्हें हिरण्यगर्भ कहा गया है।[४] सर्वप्रथम आदि में होने से इन्हें आदित्य कहा गया, इनसे ही जगत व्यक्त अथवा प्रसूत हुआ। अतः सूर्य भी कहते हैं–

हिरण्यगर्भो भगवानेष छन्दसि पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते॥

अतएव स्पष्ट है कि हिरण्यगर्भ, आदित्य तथा सूर्य परस्पर अभिन्न हैं। विष्णु का अंश ही सूर्य हैं, भगवान वासुदेव ने गीतोपनिषत्सु में सुस्पष्टोल्लेख किया है।[५] सूर्य सिद्धान्त के अनुसार परज्योतिस्मान सविता हैं, अन्धकार को लांघकर भगवान सूर्य किरणों के माध्यम से भुवनों में भ्रमण करते हैं।[६] आकाशादि में गतिमान होने से क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युग की कल्पना सूर्यनारायण के बिना सम्भव नहीं है। सूर्यनारायण के सामान्य द्वादश नाम इस प्रकार हैं– आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, पतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि। विशेष द्वादश नाम विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य–ये द्वादश आदित्य हैं। चैत्रादि बारह महीनों में ये ही द्वादश आदित्य उदित रहते हैं। विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विष्णु सर्वमान्य प्रतिष्ठित हैं।

उत्तरायण में सूर्य-किरणें वृद्धि को प्राप्त करती हैं और दक्षिणायन में किरणों की वृद्धि घटने लगती है। इस प्रकार सूर्य-किरणें लोकोपकार में प्रवृत्त रहती हैं।

प्रणिधाय शिरो भूमौ नमस्कारपरो रवेः।
तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।

सूर्य का पूर्वाह्न में रक्तवर्ण, **ऋग्वेद-स्वरूप** तथा राजसरूप होता है। मध्याह्न में शुक्लवर्ण, **यजुर्वेद-स्वरूप** एवं सात्त्विक रूप होता है। सायंकाल में कृष्णवर्ण, **सामवेदस्वरूप** तथा तामसरूप होता है। इन तीनों में भिन्न ज्योतिः स्वरूप सूक्ष्म और **निरञ्जनस्वरूप** चतुर्थ स्वरूप है।

भगवान सूर्य से ही सत्य आदि युगों तथा काल की गणना इन्हीं से सिद्ध होती है। ज्योतिषशास्त्रों में भी ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, राशि, आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, अग्नि, अश्विनीकुमार, इन्द्र, प्रजाति, दिशाएँ, भूः, भुवः, स्वः– ये सभी लोक और पर्वत, नदी, समुद्र, नाग तथा सम्पूर्ण भूतग्राम की उत्पत्ति के एकमात्र हेतु भगवान् सूर्यनारायण ही हैं।

सूर्यकिरणों से चिकित्सा का विधान एवं लाभ

वेदों में सूर्य को इस स्थावर और जंगम जगत की आत्मा कहा गया है– **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (ऋक्. १/११५/१, यजु. ७/४२, अथर्व. १३/२/३५, तैत्ति. सं. १/४/४३/१)। यह मन्त्र ऋक् यजु और अथर्व तीनों वेदों में आया है। वेदान्तानुसार प्रश्नोपनिषद् में सूर्य को 'प्राणः प्रजानाम्' अर्थात् मनुष्य मात्र का प्राण कहा गया है। मत्स्यपुराण का कहना है कि **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** अर्थात् यदि नीरोगता की इच्छा है तो सूर्य की शरण में जाओ। अतएव प्राचीन ऋषि-मुनि और आचार्यों ने सूर्योपासना तथा सूर्यनमस्कार आदि की विधि प्रचलित की है।

उदित होते हुए सूर्य से अवरक्त (हलकी लाल – Infrared) परावैंगनी किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणों में जीवनी शक्ति होती है और रोगों को नष्ट करने की विशेष क्षमता होती है। अतएव ऋग्वेद में कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य हृदय के समस्त रोगों को, पीलिया और रक्ताल्पता (Anaemia) को दूर करता है।[७] अथर्ववेद में भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सूर्य की अवरक्त किरणें हृदय की बीमारियों को तथा खून की कमी को दूर करती है।[८]

प्रातः सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना और हवन करने का यही रहस्य है, कि ऐसा करने से सूर्य की अवरक्त किरणें सीधे छाती पर पड़ती हैं और उनके प्रभाव से व्यक्ति सदा नीरोग रहता है।

अथर्ववेद के नौंवे काण्ड का आठवाँ सूक्त विशेष महत्त्व का है। इसमें बाईस मन्त्रों में सूर्य किरणों की चिकित्सा से ठीक होने वाले रोगों की एक लम्बी सूची दी गयी है और कहा गया है कि उदित होते हुये सूर्य इन रोगें को नष्ट करता है।[९] इस सूची में निर्दिष्ट प्रमुख रोग हैं– सिरदर्द, कानदर्द, रक्त की कमी, सभी प्रकार के सिर के रोग, बहरापन, अंधापन, शरीर में किसी प्रकार का दर्द या अकड़न, सभी प्रकार के ज्वर, पीलिया (पाण्डुरोग), जलोदर, पेट के विविध रोग, विष का प्रभाव, वातरोग, कफज रोग, मूत्र रोग, आँख की पीड़ा, फेफड़ों के रोग, हड्डी-पसली के रोग, आँतों की योनि के रोग, यक्ष्मा (T.B.) घाव, रीढ़ की हड्डी, घुटना और कूल्हे के रोग आदि। एक अन्य सूक्त में 'सूर्यः कृणोतु भेषजम्' सूर्य इन रोगों को ठीक करें, कहकर अपचित (गण्डमाला), गलने और सड़ने वाली बीमारियाँ तथा कुष्ठ आदि रोगों का उल्लेख किया गया है।[१०]

ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य मनुष्य को नीरोगता, दीर्घायुष्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं– **सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता ने रासतां दीर्घामायुः॥** (ऋक्. १०/३६/१४) एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि सूर्य की किरणें मनुष्य को मृत्यु से बचाती है– **सूर्यस्त्वाधिपति-र्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥** (अथर्व. ५/३०/१५) सूर्य की सात किरणों से सात प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है– **अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः॥** (ऋक्. ८/७२/१६)

सूर्यकिरणों द्वारा चिकित्सा– इसके अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे सूर्य-चिकित्सा, सूर्य किरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा (Colour-therapy, Chromo-therapy, Chromopathy) आदि। इस चिकित्सा में सूर्य की किरणों को शरीर पर सीधे लेकर रोग-निवारण या सूर्य की किरणों से प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदि का प्रयोग करके रोगों का निवारण किया जाता है।

सूर्य की सात रंग की किरणें– सूर्य की किरणें सात रंग की हैं। ऋग्वेद[११] और अथर्ववेद में[१२] सूर्य की सात रंग की किरणों का उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व (सप्त अश्व) आदि शब्दों से किया गया है।

इन सात रंग की किरणों का वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरण का अलग-अलग प्रभाव है। इनकी गति और प्रकृति भी भिन्न-भिन्न है। इन सात रंगों को मिला देने से सफेद रंग हो जाता है। इन सात रंग की किरणों से ही संसार के प्रत्येक पदार्थ को रूप-रंग प्राप्त होता है। इन सात किरणों के तीन भेद किये गये हैं– उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् मध्यम और हल्का। इस प्रकार ७x३=२१ प्रकार की किरणें हो जाती हैं। इससे ही संसार के सारे रूप-रंग हैं। अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये २१ प्रकार की किरणें संसार में सर्वत्र फैली हुई हैं और ये ही सारे रूप-रंगों को धारण करती हैं– **ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः**। (अथर्व. १/१/१)

सात किरणों के नाम और प्रभाव : इन सात किरणों को अंग्रेजी और हिन्दी में ये नाम दिये गये हैं– इनकी तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) और आवृत्ति (Frequency) अलग-अलग है। अतः इनका प्रभाव भी पृथक्-पृथक् है। अपनी गति और प्रकृति के अनुसार ये विभिन्न रोगों को दूर करते हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। इन किरणों को संक्षेप में अंग्रेजी और हिन्दी में ये नाम दिये गये हैं (१) V I B G Y O R. (२) बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	**संकेत**	**नाम**	**संकेत**	**प्रभाव**
Violet	V	बैंगनी	बै	शीतल, लाल कणों का वर्धक क्षयरोग का नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तल रोगों का नाशक, रक्तशोधक
Green	G	हरा	ह	समशीतोष्ण, वातज, रोगों का नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पी	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, हृदय एवं उदर रोगों का नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगों का नाशक, उत्तेजक, केवल मालिक हेतु गति

गति और प्रकृति के आधार पर नीचे से ऊपर वाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली हैं जैसे– लाल से अधिक नारंगी, उससे अधिक पीली और सबसे अधिक प्रभावशाली बैंगनी है।

इस प्रकार भुवन भास्कर सूर्य का हमारे जीवन में कितना महत्त्व है, वेद, वेदाङ्ग उपाङ्ग वेदान्त आदि सभी शास्त्रों एवं आचार्यों ने अत्यन्त प्रशंसा की है।

संदर्भ :

१. वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूपाय कल्पते।। –मनुस्मृति

२. वेदोऽखिलोधर्मभूत्तम्। –मनुस्मृति

३. पोलिसरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तुपञ्चसिद्धान्ताः। –सूर्यसिद्धान्त

४. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः षतिरेक आसीत।
सदाधार पृथिवीद्यामुपैत सूर्य आत्मा जगत स्तुषश्च।। –यजुर्वेद।

५. आदित्यानामाहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। –श्रीमद्भगवद्गीता–१०/२१.

६. परं ज्योतिस्तम्भः पारे सूर्योऽयं सवितेति च पर्येति भुवनान्येव भावयन् भूतभावनः।। –१२/१६.

७. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।। ऋक् (१/५०/११)

८. अनु सूर्यमदयतां हृदद्योतो हरिमा च ते।। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि।। (अथर्व. १/२२/१)

९. (क) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्य ते रोगं बर्हिर्निर्मन्त्रयामहे।। (अथर्व. ९/८/१)
(ख) सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः अङ्गभेदम् अशीशमः। (अथर्व. ९/८/२२)

१०. अ. अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। (अथर्व. ६/८३/१)
आ. असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति। ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति। (अथर्व. ९/८/२२)

११. (क) सप्तरश्मिरधमत् तमांसि। (ऋक्. ४/५०/४)
(ख) आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः। (ऋक्. ५/४५/९)

१२. यः सप्तरश्मिर्वृषमभः०। (अथर्व. २०/३४/१३)

उन्माद रोग के लक्षण एवं उपाय

डॉ. दिवाकर दत्त शर्मा

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहतरिः श्रेयसो जीवितस्य च॥

'उद्‌गतो मदो यस्य' उद् पूर्वक मद् धातु से घञ् प्रत्यय होने से उन्माद शब्द की व्युत्पत्ति होती है। अर्थात् किसी भी शारीरिक व मानसिक दोष (मद) का बुद्धि की ओर उन्मार्गी होना ही उन्माद है। सामान्यतया इस रोग में मनुष्य के मन मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो जाता है जिससे मनुष्य की ज्ञानशक्ति भ्रमित हो जाती है। आयुर्वेद के आचार्य माधव ने इस रोग का लक्षण कहा है–

धीविभ्रमः सत्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥[१]

इस रोग में मनुष्य मतिभ्रम, मनचञ्चल, दृष्टि में व्याकुलता, स्वभाव में अधीरता, असम्बद्ध बोलचाल, तीव्रतर इच्छाएँ इत्यादि दोषों से युक्त होता है। अतः आचार्य चरक ने इस रोग की उत्पत्ति के विषय में कहा है–

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥[२]

इस रोगोत्पत्ति का कारण प्रमुखतः मनुष्य का प्रकृति विरुद्ध होना, दूषित भोजन करना, देव गुरु ब्राह्मणों से अपमानित होना तथा काम, क्रोध, भय, हर्षादि विकारों से मन पर आघात होना है। उन्माद रोग के मुख्यतः पाँच भेद बतलाये गये हैं, वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य एवं आगन्तुक। इस विषय में आचार्य चरक ने भी कहा है।[३]

आचार्य चरक वातजन्य उन्माद का लक्षण कहते हैं–

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवाङ्गविक्षेपणोदनानि।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्॥[४]

बिना वजह हँसना, भूलना, नाचना, गाना, विलखना, रोना, बेवजह मेहनत व अङ्गों को फेंकना, पटकना, शरीर लाल रंग का होना, कमजोर होने पर भी बल होना इत्यादि यह वातजन्य उन्माद के लक्षण हैं। पितजन्य उन्माद का लक्षण–

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः संतर्जनाभिद्रवणौष्णरोषाः।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीता च भाः पित्तकृतास्य लिङ्गम्॥[५]

अमर्ष (असहिष्णुता), संरम्भ (नेत्रों में लालिमा), विदग्धता, अभिद्रवण (दौड़कर चलना), तर्जन (दूसरों को डराना), छाया, शीतल वस्तु की इच्छा व जल की इच्छा, क्रोध तथा शरीर का पीला पड़ना ये पितजन्य उन्माद के लक्षण हैं।

कफजन्य उन्माद के लक्षण

वाकचेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियतऽतिनिद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुङ्क्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात्।।[६]

कम बोलना, आलसी, अरुचि होना, मुख से लार निकलना व वमन होना, स्त्री प्रिय, एकान्तवादी, अतिनिद्रा तथा नाखून नेत्र व जिह्वा का सफेद होना यह कफजन्य उन्माद के लक्षण हैं।

सन्निपातजन्य उन्माद के विषय में आचार्य चरक कहते हैं कि–

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्य विधिर्विवर्ज्यः।।[७]

यहाँ पर आचार्य चरक कहते हैं कि वात, पित, कफजन्य उन्माद के सभी लक्षण सन्निपातजन्य उन्माद में पाए जाते हैं। अतः यह चिकित्सा की दृष्टि से वर्जित है क्योंकि इसमें एक दोष को शांत करने पर दूसरा दोष कुपित हो जाता है।

आगन्तुक उन्माद का लक्षण

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षः पितृणामभिधर्षणानि।
आगन्तुकेहेतुनियमव्रतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे।।[८]

देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस, पितरों के कोप से उत्पन्न होने के कारण इसे आगन्तुक उन्माद कहते हैं तथा जन्मान्तर में किये अनुचित कर्मों से भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

ज्योतिशास्त्र में उन्माद रोग

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भय क्षेम कर्मणैवाभिपद्यते।।[९]

वस्तुतः कर्मवाद व पुनर्जन्मसिद्धान्त के अनुसार कर्म के तीन भेद कहे हैं। संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण। संचित व प्रारब्ध कर्म हमारे पूर्वार्जित अर्थात् पूर्वजन्मकृत कर्म होते हैं जो भाग्य के रूप में हमें भोगने पड़ते हैं। क्रियमाण कर्म वह है जो हम वर्तमान में करते हैं। ज्योतिषशास्त्र में सञ्चित व प्रारब्ध कर्म का ज्ञान जन्मकुण्डली में ग्रहयोगों व उनकी दशाओं से होता है तथा

क्रियमाण कर्म का ज्ञान गोचर पद्धति से होता है। अत: आचार्य वराहमिहिर ने भी कहा है–

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥[१०]

अत: कर्म भाग्य का निर्माता है, परन्तु दूरगामी परिणाम है इसलिए कर्म के आधार पर व्यक्ति को सुख और दु:ख मिलता है। दु:ख इस संसार में रोग, शोक, संताप, निर्धनता आदि के रूप में व्यक्त होता है। और सद्कर्म करने से रोगादि परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। अत: पूर्वार्जित असत् कर्म ही मुख्यत: रोग का कारण बनता है। जैसा कि कहा गया है–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः॥[११]

'शरीरं व्याधि: मन्दिरम्' यद्यपि मनुष्य के शरीर में विभिन्न अंगों में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं, लेकिन हमें प्रसंगवश से उन्माद का विचार करना है। उन्माद यद्यपि मानसिक रोग है ज्योतिषशास्त्र में सर्वप्रथम चन्द्रमा से इसका विचार होगा। जन्मकुण्डली में चन्द्रमा किसी भी ग्रह से ग्रसित होगा तो वह मानसिक रोग का कारण बनता है। दूसरा कारक ग्रह बुध होगा जन्मकुण्डली में बुद्धि व तर्क का कारक है तथा गुरु बुद्धिमत्ता व परिपक्वता के कारक है। शनि व सूर्य का यदि चन्द्रमा से योग हो तो वह जातक को उन्मादी बनाने में सहायक होते हैं। उन्माद रोग को बनाने में लग्न पञ्चम व अष्टम भाव, मेष, सिंह, धनु राशियाँ सहायक होती है। यद्यपि जातकग्रन्थों में उन्माद के असंख्य योग दिये हैं, किन्तु हम यहाँ पर कुछ विशेष योगों का ही वर्णन करेंगे। जैसा कि प्रश्नमार्गकार ने उन्माद सम्बन्धित कुछ विशेष योग बताये हैं।

१. यदि चन्द्रमा, शुक्र एवं अष्टमेश अनिष्ट स्थानों में हो तो विषम भोजन या उपवास के कारण उन्माद होता है।

२. यदि ये तीनों (चन्द्रमा, शुक्र एवं अष्टमेश) गुलिक राहु या केतु के साथ हो तो अपवित्र भोजन करने से उन्माद होता है।

३. पञ्चम भाव में मंगल हो तो निराशा, वैराग्य या अकारण क्रोध से उन्माद होता है।

४. षष्ठ स्थान में पापग्रह हो तो शत्रुकृत अभिचार से उन्माद होता है।

५. नवम एवं पञ्चम स्थान में पापग्रह हो तो गुरु, देवता, राजा आदि के शाप कोप या भय से उन्माद होता है।[१२]

आचार्य वैद्यनाथ ने भी जातक पारिजात में उन्माद योग कहे हैं–

१. लग्न या त्रिकोण में सूर्य या चन्द्रमा हो गुरु तृतीय भाव में या केन्द्र में हों धनु का आदि लग्न हो तो जातक की उन्माद बुद्धि होती है।[१३]

२. चन्द्रमा पापग्रह के साथ राहु से युक्त होकर १२वें, पाँचवें व आठवें भाव में हो तो वह उन्मादी क्रोधी व कलहप्रिय होता है।[१४]

जातकतत्त्वकार ने भी उन्माद सम्बन्धित योग कहे हैं–

१. लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में शनि हो।

२. लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में मंगल हो।

३. लग्न में गुरु तथा पञ्चम सप्तम या नवम भाव में मंगल हो।

४. लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं बुध दोनों हो।

५. क्षीणचन्द्रमा एवं शनि ये दोनों व्यय भाव में हो।

६. लग्न पंचम नवम व एकादश स्थान में पापग्रहों के साथ क्षीण चन्द्रमा हो।

७. सप्तम स्थान में पापग्रहों के साथ गुलिक हो।

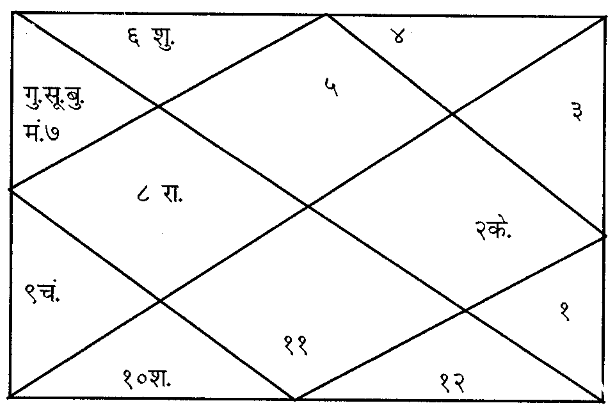
८. तृतीय, षष्ठ, अष्टम या व्यय भाव में पापग्रह के साथ बुध हो तो जातक उन्मादी या विक्षिप्त (पागल) हो जाता है।[१५]

आचार्य कल्याणवर्मा ने भी सारावली में उन्माद सम्बन्धि योग कहे हैं–

१. मिथुन या कन्या में स्थित सूर्य पर गुरु की दृष्टि हो।

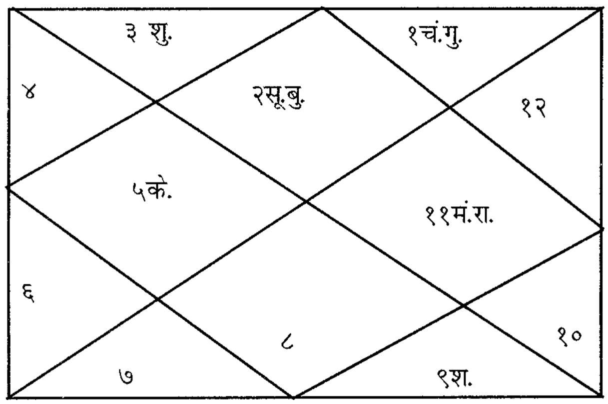
२. त्रिकोण स्थान में शनि हो।[१६]

उदाहरण– जन्मतिथि-२० अक्तूबर १९९३, समय-३:५५ प्रातः, स्थान-शिमला (हि.प्र.)



जातक की जन्म कुण्डली में तृतीय भाव में बुध पापग्रह सूर्य, मङ्गल के साथ युत है। लग्नेश नीच राशि का है तथा शनि से दृष्ट है। शनि, मङ्गल, सूर्य की परस्पर दृष्टि सम्बन्ध कारणवश जातक उन्माद रोग से पीड़ित है। वर्तमान में जातक अन्तश्चेतना से शून्य है। और मानसिक रूप से पूर्णतया अस्वस्थ है।

उदाहरण– जन्मतिथि-१५ मई १९८८, समय-५:४८ प्रातः, स्थान-शिमला (हि.प्र.)



जातक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश गुरु और चन्द्रमा दोनों १२वें स्थान में स्थित है। और शनि से दृष्ट शुक्र द्वितीय स्थान में स्थित है। और इस कुण्डली में चतुर्थ स्थान में केतु स्थित है। तथा केतु एवं चतुर्थ भाव पर मंगल शनि क्रूर ग्रहों की दृष्टि भी पड़ रही है। इसलिए यह जातक मानसिक रोगों से ग्रस्त है। वर्तमान चन्द्रमहादशा होने से इसकी मनस्थिति अभी भी ठीक नहीं है।

उन्माद की चिकित्सा व उपाय

मनुष्य मन की प्रकृति बड़ी ही जटिल है, भारतीय चिन्तन में मन के महत्त्व को जाना और समझा शायद तभी 'जिसने मन को जीता उसने सारा संसार जीता तथा मन के हारे हार ओर मन के जीते जीत' यह मन बाहर से कितना भी शक्तिशाली कठोर जान पड़े, परन्तु बहुत कोमल है। छोटी सी ठेस इसे चकनाचूर कर देती है। मानव जीवन की जटिलताएँ, स्पर्धा, संघर्ष मन को थकान व तनाव दिया करती है। ऐसे में यदि घर पर भी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो तो मानसिक रोगों की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

इन रोगों से निपटारा चाहने के लिए सर्वप्रथम अपने अन्दर मूलभूत परिवर्तन अपेक्षित होते हैं। जैसे महापुरुषों के जीवन पर चिन्तन मनन व अच्छी संगत करना, योग, आयुर्वेद, व्यायाम, ध्यान, आसनादि लगाना इत्यादि। मन को जो अच्छा लगे वह करना जिससे मन को ऊर्जा प्राप्त हो और मन शान्त हो जिससे वह अच्छे बुरे का भेद जान सके व आगे बढ़ सके।

उन्माद की चिकित्सा के विषय में आचार्य चरक ने कहा है–

उन्मादे वातजे पूर्व स्नेहपान विशेषवित्।
कफपित्तोदभवे त्वादौ वमनं सविरेचनम्॥[१७]

वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पितजन्य उन्माद में विरेचन, कफजन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगन्तुक उन्माद में यह सभी क्रियाएँ करनी चाहिए। इसके अलावा जातक व आयुर्वेद

ग्रन्थों में उन्माद दोष के लिए कल्याण घृत महाकल्याण वृत का सेवन बताया है तथा इससे यह रोग नष्ट हो जाता है।[१८]

इसी तरह आचार्य कल्याणवर्मा ने कहा है–

सप्ताष्टमषष्ठस्थाः शशिनः सौम्या हरन्त्यरिष्टफलम्।
पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम्॥[१९]

इस प्रकार से मानसिक रोग उन्माद, सनक प्रमाद, अपस्मार इत्यादि रोगों से निपटारा पाने के लिए विशेषतया खान-पान का विशेष ध्यान व शीतल पेय पदार्थों का प्रयोग व नियमित रूप से सैर-व्यायाम व दैनिक क्रियाओं में सुधार व दृढ़ निश्चयी बनें और नित्य सन्ध्यावन्दन, सूर्य-अर्घ्य, गायत्री मन्त्रोच्चारणादि करें। मोती धारण करें, चन्द्रमा के बीज मन्त्र का नियमित रूप से जप करें। ईश्वरीय शक्ति व आपकी मेहनत व लगन से हर असम्भव कार्य सम्भव हो सकता है।

संदर्भ :

१. माधवनिदानम्, उन्मादनिदानम् अध्याय २०, श्लो. ६
२. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/४
३. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/८
४. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/१०
५. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/१२
६. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/१४
७. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/१४
८. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/१६
९. श्रीमद्भागवत १०/२४/१३
१०. लघुजातक १/३
११. प्रश्नमार्ग १३/२९
१२. प्रश्नमार्ग १२/४६-४८
१३. जातकपारिजात ६/८०
१४. जातकपारिजात ६/८३
१५. जातकतत्त्व, प्रकीर्णतत्त्व, सूत्र १५३-१५९
१६. सारावली २२/२३, ३०/७८
१७. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/२५
१८. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ९/३६
१९. सारावली ११/७

तनाव प्रबन्धन में ज्योतिषशास्त्रीय परामर्श की उपादेयता

मीनाक्षी मिश्र

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, परन्तु साथ ही साथ वह एक सांवेगिक प्राणी भी है। विवेकशील प्राणी के रूप में वह अपनी प्रेरणाओं की संतुष्टि बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से करता है। परन्तु सांवेगिक प्राणी के रूप में वह कभी-कभी विवेक शून्य हो जाता है तथा क्रोध, द्वेष, प्रेम, घृणा, भय आदि भावों को प्रकट करने लगता है। मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवनकाल की विविध परिस्थितियों में अपने भावात्मक पक्षों से रंजित होकर शैक्षिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक अन्त:क्रियाएँ करता है। वह कभी प्रसन्न रहता है तो कभी दु:ख एवं संताप का अनुभव करता है। कभी शान्त और निश्चल होकर भावात्मक आवेगों में डूबा रहता है तो कभी उग्र रूप में उत्तेजित होकर विक्षुब्धता के भावों को प्रदर्शित करता है। अत: वह स्नेह, प्रेम, भय, आशा, निराशा आदि भावों से उद्वेलित होता रहता है। भावों के यह विविध रूप वस्तुत: मानव जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है उदाहरणार्थ तीव्र संवेगात्मक अवस्था में व्यक्ति का निर्णय गलत हो सकता है जिससे कि उसके मन में अथवा पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होता है और जीवन दुष्कर होने लगता है कहा भी गया है कि संवेग जहाँ मानवों को उर्जस्वी, संगठित एवं शक्तिशाली बनाते हैं वहीं मानव को दुर्बल एवं विगठित भी कर सकते हैं। अत: उचित समय पर मनुष्य के भावों का निदान करके तनाव प्रबन्धन की महती आवश्यकता है।

तनाव की समस्या

संवेगों का सम्बन्ध मूल प्रवृत्तियों से होता है जो मानव को विभिन्न व्यवहारों के लिए प्रेरित करते हैं। मनुष्य में कुछ प्रेरक जन्मजात होते हैं और कुछ अर्जित होते हैं। आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह शैक्षिक, सामाजिक, व्यवसायिक एवं धार्मिक कार्यों में रत रहता है। परन्तु आकांक्षा के अनुरूप उपलब्धि न होने पर वह मानसिक दबाव एवं सांवेगिक अस्थिरता से युक्त हो जाता है। जिससे प्राय: वह तनाव की स्थिति में रहता है। मनोवैज्ञानिक ब्रॉन के अनुसार–

''तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रियाओं के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है अथवा विघटित करने की चेतावनी देता है।''

सामान्यत: यह समझा जाता है कि जीवन की नकारात्मक घटनाओं से ही तनाव उत्पन्न होता है। परन्तु सच्चाई यह है कि स्वीकारात्मक घटनाओं से भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है, जैसे–समूह का नेता बनना, पदोन्नति पाना, पुरस्कार पाना, उच्च कुल में विवाह होना आदि। शरीर शास्त्री Hans selye ने भी तनाव के दो प्रकार बताए हैं जो इस प्रकार हैं–

तनाव (stress)

- **स्वीकारात्मक तनाव (Eustress)**
- **नकारात्मक तनाव (Distress)**

तनाव चाहे जिस भी प्रकार हो वह व्यक्ति पर बुरा प्रभाव ही डालता है। तनाव की स्थिति में व्यक्ति में दो प्रकार प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जिन्हें मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक प्रतिक्रिया कहा जाता है।

प्रतिक्रियाएँ

- मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ
  - संज्ञानात्मक विकृति
    - –एकाग्रता में कमी
    - –अनुचित प्रत्यक्षण
    - –क्षीण स्मृति
    - –विवेकहीनता
  - सांवेगिक अनुक्रियाएँ
    - –भय
    - –चिन्ता
    - –आक्रामकता
    - –भावशून्यता
    - –विषाद
- दैहिक प्रतिक्रियाएँ
  - बाह्यपरिवर्तन
    - मुखाकृति अभिव्यंजना स्वराभिव्यञ्जना में परिवर्तन
  - आन्तरिक परिवर्तन
    - –श्वसन क्रिया में अन्तर
    - –हृदय गति में परिवर्तन
    - –नाड़ी गति में परिवर्तन
    - –रसपाक में अन्तर
    - –रक्त रसायन में परिवर्तन
    - –मानसिक तरंगों का विघटन
    - –ग्रन्थियों के स्राव में

इन प्रतिक्रियाओं के अलावा भी कभी–कभी आपातकालीन प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं जैसे शुगर का बढ़ना, श्लेष्मा में कमी आना, रुधिर की रक्त एवं श्वेत कणिकाओं में कमी आ जाना। बार–बार या लम्बे समय तक इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक परिवर्तन व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं जीवन को प्रभावित करते हैं। वर्तमान में तनाव एक बहुत बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधकार्यों से यह स्पष्ट हुआ है कि लगभग 75 प्रतिशत रोगों का कारण तनाव होता है। यहाँ तक की कैंसर, हृदय रोग जैसे घातक रोगों में तनाव की भूमिका सिद्ध हो चुकी है। छोटे बच्चे भी इस तरह की समस्याओं से प्रभावित होते जा रहे हैं।

अत: व्यक्ति और समाज को तनावमुक्त बनाने के लिए समुचित प्रयास किये जाने चाहिए। विशेष रूप से बालकों एवं किशोरों के लिए ऐसी प्रणाली या व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए जिससे की वे अपने जीवन को उन्नत बना सकते हैं। परन्तु किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत

करने से पहले समस्या के कारणों का सही-सही निदान आवश्यक है।

तनाव के कारक

व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होनें के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे–व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यवसायिक, शैक्षिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि। तनाव के कारणों का अध्ययन करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय विधियाँ हैं परन्तु इन विधियों के द्वारा कुछ ही कारकों का अध्ययन सम्भव हो पाता है। ज्योतिषशास्त्र एक ऐसी विधा है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का अध्ययन कर सकती है तथा इसके द्वारा तनाव उत्पन्न होने के मूलभूत कारणों को भी जाना जा सकता है। ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टि से व्यक्ति में तनाव का अध्ययन करने हेतु प्रमुख छः कारकों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है–

ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टि से प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक

क्र.सं.	कारक	प्रभावित क्षेत्र
1.	लग्न	व्यक्तित्व प्रकार, अहंभाव, आत्म प्रतिभा, कैरियर, सुख-समृद्धि, पारस्परिक सम्बन्ध आदि
2.	राशि	चन्द्र से सम्बन्धित होने के कारण व्यक्ति की सांवेगिक एवं भावात्मक प्रवृत्ति को प्रभावित करती है।
3.	ग्रह	जन्मचक्र में ग्रह स्थिति के अनुसार व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के सामर्थ्य, योग्यताओं एवं उपलब्धियों को प्रभावित करते हैं। (क) सूर्य आत्मा (ख) चन्द्र मन (ग) मंगल शक्ति (घ) बुध वाणी (ङ) गुरु ज्ञान/सुख (च) शुक्र मद (छ) शनि दु:ख/मानसिक तनाव/दुश्चिन्ता
4.	भाव	द्वादश भाव तथा उनमें ग्रहों की स्थिति शारीरिक अंगों के विकास एवं क्षमताओं तथा व्यक्ति के शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक, व्यावसायिक, पारिवारिक क्षेत्रों को प्रभावित

			करते हैं। जैसे–
	(क)	द्वितीय भाव	वाणी/बाल्यावस्था
	(ख)	चतुर्थ भाव	गृह/माता/हृदय/संवेग
	(ग)	पञ्चम भाव	बुद्धि/जीवन मूल्य/जीवन लक्ष्य/आकांक्षाएँ/निर्णय क्षमता/सर्जनात्मकता
	(घ)	चतुर्थ भाव	कैरियर/व्यवसाय/सामाजिक प्रतिष्ठा
5.	विंशोत्तरी दशा		विभिन्न अवस्थाओं में विंशोत्तरी दशा एवं प्रत्यन्तर दशाऐं व्यक्ति के जीवन काल में होने वाले उतार–चढ़ाव को प्रभावित करते हैं। जैसे–
	(क)	चन्द्र–राहु चन्द्र–शनि चन्द्र–केतु चन्द्र–भौम	मानसिक द्वन्द्व
	(ख)	चन्द्र–बुध	सांवेगिक उत्तेजना
	(ग)	बुध–राहु	अनुचित निर्णय
	(घ)	शनि	तनाव/दुश्चिन्ता/बाधाएँ/कार्य में विलम्ब
6.	ग्रहण		सूर्य, चन्द्र और राहु के कारण ग्रहण होते हैं। ग्रहण का प्रभाव व्यक्ति के मन और शरीर दोनों पर पड़ता है। ग्रहण जन्म के पूर्व (गर्भावस्था में), जन्म के समय तथा जन्म के पश्चात् तीनों अवस्थाओं को प्रभावित करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आकाशीय पिण्ड व्यक्ति के जीवन से जुड़े हर पक्ष को प्रभावित करते हैं। अतः व्यक्ति की समस्याओं के कारणों को जानने में ज्योतिषशास्त्र की महती भूमिका है।

तनाव प्रबन्धन में ज्योतिषशास्त्रीय परामर्श

जब किसी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है तो उसका उपचार अवश्य होना चाहिए। कुछ व्यक्ति तनाव मुक्ति के लिए स्वयं ही प्रयास करते हैं तथा कुछ लोग चिकित्सकीय परामर्श भी लेते हैं। अनेक ऐसे व्यक्ति भी हैं जो जीवन की व्यस्तता में तनाव का उपचार नहीं करते तथा

तनावयुक्त जीवन जीने लगते जिसके दुष्परिणाम शीघ्र ही परिलक्षित होने लगतें हैं। वैसे तो तनावप्रबन्धन के विविध कार्यक्रम अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे हैं परन्तु प्रायः उनसे सम्पूर्ण समाधान नहीं हो पाता है। साथ ही ऐसे कार्यक्रम अत्यधिक व्ययशील भी होते हैं जिससे सामान्य व्यक्ति लाभान्वित नहीं हो सकते हैं।

भारतीय परम्परा में ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद एवं योग ऐसी प्रणालियाँ हैं जो तनाव प्रबन्धन में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रदान कर सकती हैं। पातंजल योग सूत्र में कहा भी गया है–

जन्मौषधि-मन्त्र-तपः समाधिजा सिद्धयः।

अर्थात् व्यक्ति को मानसिक शक्ति या तो जन्म से प्राप्त होती है अथवा औषधि, मन्त्र, तप या समाधि के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का अध्ययन करने में ज्योतिषशास्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जातक के जन्म चक्र में स्थित ग्रह उसके दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के निर्धारक होते हैं। उसी प्रकार ये तनाव उत्पन्न होने के कारणों से भी अवगत कराते हैं। अतः व्यक्ति को तनाव के कारणों एवं उसके उपचार हेतु समुचित परामर्श प्राप्त करना चाहिए। तनाव से मुक्ति हेतु निम्न प्रकार की चिकित्सा को अपनाया जा सकता है–

–मनोविज्ञानिक–चिकित्सा

–औषधि चिकित्सा

–मन्त्र चिकित्सा

–रत्न चिकित्सा

–वर्ण चिकित्सा

–गंध चिकित्सा

–योग एवं ध्यान चिकित्सा

व्यक्ति अपनी सुविधानुसार किसी भी पद्धति को अपना सकता है। परन्तु चिकित्सा यदि ज्योतिषशास्त्रीय परामर्श के अनुसार की जाए तो वह अधिक फलीभूत होती है। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत पत्र में 'ज्योतिषशास्त्र' एवं 'योग' को लेकर किंचित विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यौगिक प्रक्रिया के मूल में शरीरस्थ षट्चक्रों का ज्ञान होता है। 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' सूत्र के अनुसार इस शरीर मे भी सौरमण्डल स्थित है, जो हमारे जीवन को संचारित करता है। सूर्य के प्रतिरूप में 'प्राण उर्जा' शरीर में प्रतिष्ठित होती है जो 'जीवन उर्जा' का संचार करती है। और चन्द्र

'मन' के रूप में प्रतिष्ठित होकर 'मानसिक व्यवहार' का द्योतक है। कहा भी गया है 'चन्द्रमा मनसो जात'। चन्द्र और सूर्य का सम्बन्ध 'इडा' और पिंगला नाडियों से भी है, तथा षट्चक्रों से अनुप्रस्थित होती हैं। षट्चक्रों एवं सम्बन्धित ग्रहों के विषय में कुछ मतान्तर दृष्टिमत होते हैं। अध्यात्म ज्योतिष के अनुसार षट्चक्र एवं ग्रह इस प्रकार हैं–

क्रम संख्या	चक्र	अधिदेवता	सम्बन्धित ग्रह
1	मूलाधार	गणेश	बुध एवं राहु
2.	स्वाधिष्ठान	विष्णु	शुक्र
3.	मणिपुर	रुद्र	सूर्य
4.	अनाहत	रुद्र	मंगल
5.	विशुद्ध	रुद्र	चन्द्र
6.	आज्ञा	रुद्र	गुरु

डेविड फ्रॉवले ने अपनी पुस्तक 'Aurvedic Astrology' में चक्रों एवं ग्रहों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

S.N.	**Chakras**	**Ruler**	**Solar**	**Lunar signs**	**Exalted**
1.	Root	Saturn	Copricorn	Aquaries	Mars
2.	Sex	Jupiter	Sagittarius	Pisces	Venus
3.	Navel	Mars	Scorpio	Aries	Sun
4.	Heart	Venus	Libra	Taurs	Saturn, Mom
5.	Throat	Mercury	Virgo	Gemini	Mercury
6.	Head	Sun, Moon	Lio	Cancer	Jupiter

श्वास लेते समय प्राण वायु का संचार इन्हीं चक्रों के द्वारा होता है तथा साथ ही अपान, व्यान, समान एवं उदान आदि भी संचारित होते हैं। शरीरस्थ वायु का ज्ञान नाड़ियों से किया जाता है जिसका उल्लेख 'स्वरशास्त्र' में इस प्रकार मिलता है–

इडानाडी स्थितश्चन्द्रः पिङ्गला भानुवाहिनी।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण, शम्भुर्हसस्वरूपकः॥[1]

1. नरपतिजयचर्या हंसचार श्लोक, 19

अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी शम्भुरूप है तथा शम्भु 'हंसस्वरूप' है। यहाँ पर 'हंस' का अभिप्राय श्वास के निर्गम और प्रवेश की प्रक्रिया से है। 'ह'कार श्वास के निर्गम को तथा 'स'कार श्वास का नासिकारन्ध्र से प्रवेश को व्यक्त करता है। यह सुषुम्ना नाडी 'ह'कार रूप में शम्भु तथा 'स'कार रूप में शक्ति का परिचायक है। इन दोनों का सम्बन्ध इडा और पिंगला नाड़ियों से है। इडा नाड़ी चन्द्र शक्ति (वायु) को धारण कर नासिका के वामरन्ध्र से प्रवाहित है तथा पिंगला नाड़ी सूर्य वायु को लेकर नासिका के दक्षिणरन्ध्र से प्रवाहित होती है। इन दोनों रन्ध्रों से प्रवाहित होने वाली वायु शम्भुरूप 'ह'कार एवं शक्ति रूप 'स'कार से युक्त होती है। इडा और पिंगला दोनों नाड़ियाँ सुषुम्ना के सहयोग से ही प्रवाहित होती हैं।

जब हम श्वास लेते हैं तो प्राणवायु मूलाधार से ऊपर की ओर उठती है तब शरीर में द्रव्यों का संचार होता है। श्वास बाहर छोड़ते समय प्राण वायु आज्ञाचक्र से मूलाधार की ओर प्रवाहित होती है जिसके फलस्वरूप रक्त परिसंचरण, पाचन एवं मानसिक क्रियाएं आदि घटित होती हैं। ज्योतिष के 'स्वरशास्त्र' एवं योगशास्त्र के अनुसार स्वस्थ मनुष्य की एक अहोरात्र में 21,600 (इक्कीस हजार छः सौ) श्वसन क्रिया होनी चाहिए। इससे कम या ज्यादा क्रिया पंचमहाभूतों में विकृति का सूचक है जिससे दैहिक एवं मानसिक विकार उत्पन्न होते जो तनाव को भी उत्पन्न करते हैं। इन पंचमहाभूतों का भी ग्रहों से घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्यसिद्धान्त में इस प्रकार मिलता है–

अग्निषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः।
तेजो भूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे।।[2]

अर्थात् सूर्य अग्नि है तथा चन्द्र सोम है। साथ ही भौमादि पाँच ग्रह क्रम से तेज (अग्नि), भू (पृथ्वी), (ख) आकाश, अम्बु (जल) तथा वात (वायु) से युक्त होते हैं। ये पाँच तत्त्व उक्त तीनों नाड़ियों का आश्रय लेकर श्वास के साथ प्रवाहित होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि यह स्थावर जङ्गात्मक सृष्टि सौरमण्डल से प्रभावित होती है। जिसका विशिष्ट अध्ययन ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही सम्भव है। ज्योतिषशास्त्र द्वारा व्यक्ति की जन्मकालिक ग्रहस्थिति एवं विकृति का ज्ञान आसानी से किया जा सकता है। शारीरिक या मानसिक विकार की पहचान के पश्चात् तनाव के कारणों को जान सकते हैं। तनाव के कारकों की पहचान यदि उचित समय पर कर ली जाए तो तनाव प्रबन्धन में उपर्युक्त सहायता मिलती है। अतः तनावयुक्त व्यक्ति की लग्न, राशि, भावों में ग्रहस्थिति एवं विंशोत्तरी दशा आदि का अध्ययन करके तनाव प्रबन्धन हेतु उसे उचित परामर्श दिया जा सकता है। ज्योतिष मात्र वर्तमान ही नहीं अपितु भविष्य की सम्भावनाएं कहा जा सकता है कि तनावप्रबन्धन में ज्योतिषशास्त्रीय परामर्श की उपादेयता सर्वाधिक है।

---

1. सूर्यसिद्धान्त, 12.24

ज्योतिषीय परिप्रेक्ष्य में रक्तचाप : कारण, लक्षण एवं निदान

डॉ. अशोक थपलियाल

रक्तचाप क्या है?

रक्तचाप अर्थात् रक्त का दबाव(बीपी), जो कभी-कभी धमनी रक्तचाप के रूप में भी जाना जाता है। यह खून परिसंचरण द्वारा रक्त वाहिकाओं की दीवारों पर होने वाला दबाव है, जो जीवन का एक प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण संकेत है, रक्तचाप, आमतौर पर प्रणालीगत संचलन के सैद्धान्तिक दबाव को दर्शाता है, हर दिल की धड़कन के दौरान रक्तचाप (सिस्टोलिक) अधिकतम और न्यूनतम दबाव (डायस्टोलिक) के बीच बदलता रहता है।

वयस्कों में रक्तचाप

Classification of blood pressure for adults

Category	systolic, mmHg	diastolic, mmHg
Hypotension	90	< 60
Desired	90-119	60-79
Prehypertension	120-139	80-89
Stage I Hypertension	140-159	90-99
Stage 2 Hypertension	160-179	100-109
Hypertensive Crisis	≥ 180	≥ 110

अवयस्कों में रक्तचाप

Reference ranges for blood pressure

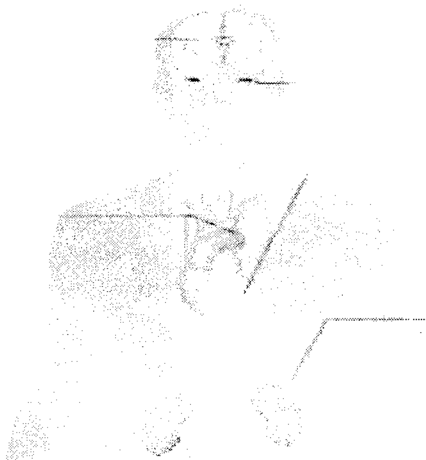
Stage	Approximate age	Systolic	Diastolic
Infants	1 to 12 months	75-100	50-70
toddlers	1 to 4 years	80-110	50-80
Preschoolers	3 to 5 years	80-110	50-80
School age	6 to 13 years	85-120	50-80
Adolescents	13 to 18 years	95-140	60-90

उच्च रक्तचाप के दुष्परिणाम

Main complications of persistent
High Blood Pressure

Brain:
-Cereorovasculr
Hypertensive
electrop....
-confusion
confusion
headache
con........
heart failure

Blod:
Levrated
sugar levels



Retina of eye:
Hypertensive meanopathy

Heart
Myocardial infaction
(heart attack)
cardomypahy

Kidneys:
Hypertensive
nephopathy
chronic renal failure

निम्न रक्तचाप के दुष्परिणाम

1- Hypotension- उलझन, घबराहट,
2- Sepsis- रक्त का विकार
3- Hemorrhage- रक्तस्त्राव
4- Toxins- विषाक्तता
5- Hormonal abnormalities – अतिरिक्त रोगों का खतरा
6- Eating disorders
7- Shock

भारतीय दर्शन के अनुसार रोग के कारण

रोग जन्मान्तरीय किए गए महापातकों का सूचकचिह्न है।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिःशमः॥[1]

ज्योतिषशास्त्र पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल का विश्लेषण करता है।

ज्योतिष एवं आयुर्वेद

* ज्योतिष एवं आयुर्वेद का पारस्परिक गहन सम्बन्ध रहा है।

---

1. शब्दकल्पद्रुम्

* पूर्वकर्मजन्य रोगों की प्रकृति, सम्भावित काल, आध्यात्मिक चिकित्सा आदि के ज्ञान में ज्योतिषशास्त्र सहायक।
* रोगी की कुण्डली के ज्योतिषीय विश्लेषण द्वारा रोग की गम्भीरता का निर्णय करने का निर्देश आयुर्वेद एवं ज्योतिष के ग्रन्थों में प्राप्त है।
* आयुर्वेद एवं ज्योतिष के ग्रन्थों में जड़ी-बूटियों का संग्रह एवं उनसे आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण तथा सेवन, प्रयोग आदि के काल का निर्देश भी प्राप्त होता है।
* प्राचीन काल से ही वैद्य रोगों के सफल उपचार के लिए ज्योतिष की सहायता लेते आये हैं। अतः प्राचीन काल से ही आदर्श वैद्यराज के लिए ज्योतिष का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक रहा है। 'ज्योतिर्वैद्यो निरन्तरम्'।

आयुर्वेद के अनुसार रक्तचाप के कारण-

* **देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।**
  तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः॥[1]
* आयुर्वेद में वर्णित वातरक्त व रक्तपित्त के लक्षण रक्तचाप की स्थिति में भी पाये जाते हैं।
* वीरसिंहावलोक के अनुसार वातरक्त के 2 भेद हैं-
* उत्तानवातरक्त- त्वचा एवं मांस (मांसपेशियां) आश्रय
* अवगाढ या गम्भीर (कॉलस्ट्रोल)- अन्तराश्रय

वातरक्त के कारण-

लवण, अम्ल व कटुरसप्रधान भोजन, स्निग्ध भोजन, उष्णप्रकृतिभोजन, क्षीरयुक्त भोजन का अधिक सेवन, भोजन न पचने पर भी भोजन करते रहना, पर्युषित (बासी), सड़े-गले व शुष्कमांस, अधिक मात्रा में जलजन्तुओं का मांस भक्षण, आलू, अरबी, मूली, गाजर, प्याज लहसुन आदि का अधिक सेवन, तक्र, सुरा, आसव का अधिक सेवन, विरुद्ध भोजन, क्रोध, दिवाशयन, रात्रि में विशेष जागरण, सुकुमार (आरामपसन्द) तथा मिथ्या आहार-विहार करने वाले लोगों को वातरक्त होता है।

विशेष-आधुनिक विज्ञापन के अनुसार विशेष प्रोटीन (वातरक्त) की विकृति से रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ने से रक्तचाप होता है।

रक्तपित्त के कारण-तीखा, क्षार, लवण, अम्ल व कटुरस प्रधान भोजन, उष्ण प्रकृति भोजन का अधिक सेवन, अत्यधिक गरम वातावरण में रहना, अधिक व्यायाम करना, शोक, विपरीत मार्ग पर चलना, अधिक स्त्रीसंभोग आदि।

---

1. सुश्रुतसंहिता

शरीर पर प्रभाव–दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, अशुभ, शरीर में पीलापन, शरीर में जलन, मूर्च्छा, हृदयरोग के समान कष्ट, अधिक प्यास, जोड़ों में टूटन, शिर में तपन, थूक में बदबू इत्यादि।

विशेष–उपर्युक्त लक्षण प्रायः रक्तचाप में भी प्राप्त होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र में रक्तचाप के योग

ज्योतिषशास्त्र के मानकग्रन्थों में स्पष्टरूप से रक्तचाप शब्द का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु रक्तविकार, रक्तक्षोभ, रक्तप्रकोप, ऊर्ध्वाङ्गरोग, हृदयरोग, पक्षाघात इत्यादि रोगों के योगों द्वारा रक्तचाप की परिस्थिति, प्रभाव और लक्षण के कारण अनुमानित किए जा सकते हैं। साथ ही ग्रहों के कारकत्वादि से भी रक्तचाप की परिस्थिति का अनुमान किया जा सकता है।

सम्बन्धित ज्योतिषतत्त्वों का अनुशीलन

शरीरस्थ सप्तधातुओं के अधिपति ग्रह–

स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वथ शुक्रवसे च मज्जा
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः॥[1]

* यहाँ चन्द्र को रक्त का कारक कहा गया है।
* चन्द्र मन का भी कारक- **शीतकरस्तु चेतः।**[2]
* ग्रहों के रोगकारकत्व[3] में सूर्य, शनि व राहु को हृदयरोग, चन्द्र को रक्तविकार व मंगल को रक्तप्रकोप का कारक माना गया है।
* प्रश्नमार्ग[4] में मंगल को रक्तक्षोभ द्वारा मृत्यु का प्रतिनिधि ग्रह कहा गया है। इस प्रकार रोगकारक प्रभाव से चन्द्र व भौम का सम्बन्ध रक्तचाप का कारण हो सकता है।
* सूर्य व मंगल पित्त, चन्द्र व शुक्र वातकफ, शनि वात, बुध वातपित्तकफ तथा गुरु कफप्रदान ग्रह है।[5]

वातरक्तयोग-

व्योमस्थाने महीपुत्रः शनिदृष्टोयदा भवेत्।
जन्मकाले यस्य जन्तोः स वातरुधिरार्दितः॥[6]

1. बृ.जा.2/11
2. ल.जा.2/1
3. फलदीपिका 14/2-9
4. प्रश्नमार्ग, 12/21-22
5. बृ.जा. 2/8-11
6. वीरसिंहावलोक

रक्तपित्त योग-

चन्द्रक्षेत्रे यदा भौमो जायते मनुजस्था।
रक्तपित्तेन शूनाङ्गो नानाव्याधिसमाकुलः।।[1]
रक्तपित्तज्वरदाहमग्निचौरेरूपद्रवम्।
लभते नात्र सन्देहश्चन्द्रमध्ये यदा कुजः।।[2]

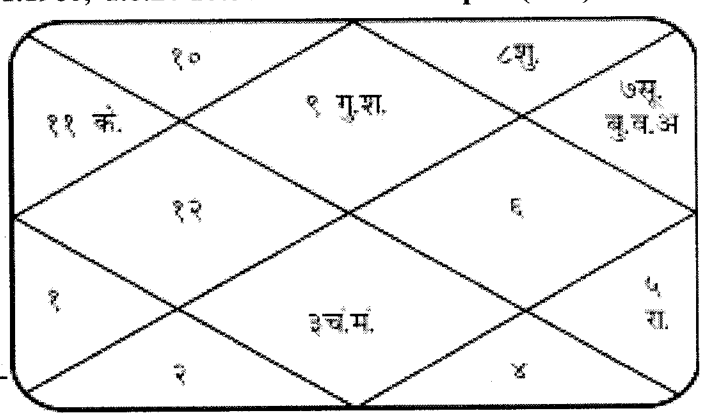
* पक्षाघात, हृदयरोग, हृदयशूल, रक्तक्षोभ, रक्तविकार इत्यादि रोगों के योगों में चन्द्र, मंगल, शनि व सूर्य तथा वृश्चिक, कर्क व कन्या राशियों का विशेष प्रभाव होता है।

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसंवादवशाद्वदन्तु।।[3]

प्राक्कल्पना

* चन्द्र व भौम का परस्पर युति व दृष्टि सम्बन्ध।
* सूर्य, शनि व राहु की चन्द्र व भौम के साथ युति व दृष्टि।
* वृश्चिक, कर्क व कन्या राशियों में चन्द्र व भौम की स्थिति।
* चन्द्र व भौम की परस्पर दशा, अन्तर्दशादिकों में रोग की प्रबलता।
* लग्न व लग्नेश निर्बल होने पर रोग की प्रबलता।
* 6, 8 व 12 स्थानों में चन्द्र, भौम, सूर्य, शनि व राहु में से 2 या अधिक ग्रहों की स्थिति या दृष्टि रोग की प्रबलताकारक।
* षष्ठेश का चन्द्र व भौम से सम्बन्ध।
* यदि चंद्रमा और मंगल ग्रह निर्बल हों और इनकी राशियाँ कर्क, मेष व वृश्चिक पापग्रह से पीड़ित हों व ये राशियां 6, 8 व 12 स्थानों में हों तो रोग की प्रबलता।

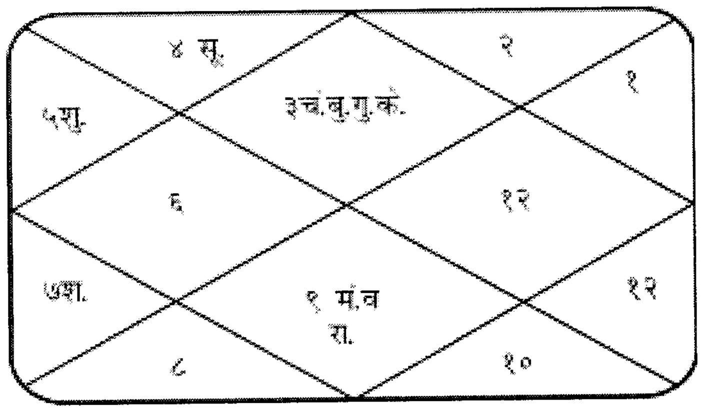
1. D.oB. 08.11.1960, T.o.B. 10:30 AM P.O.B. Hapur (U.P.)



1. वीरसिंहावलोक
2. तत्रैव
3. फलदी. 14/1

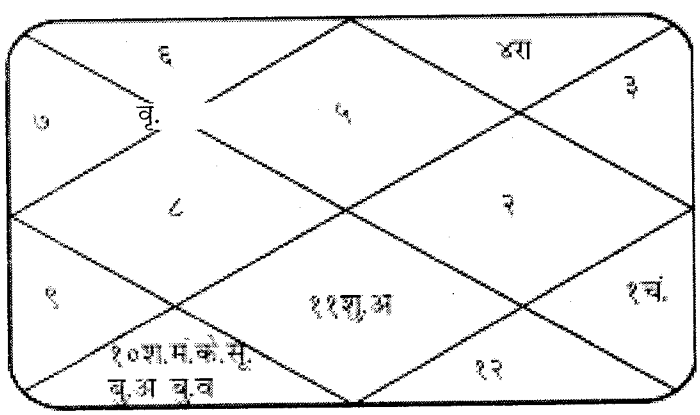
सप्तम भाव में चन्द्र व भौम की संयुति। षष्ठेश शुक्र वृश्चिक राशि में 12वें भाव में स्थित है। 8वें एवं 12वें भाव में कर्क व वृश्चिक राशियां हैं। लग्नेश गुरु लग्न में है परन्तु शनि से युक्त तथा मंगल व चन्द्र से दृष्ट। जातक 2009-2010 में उच्चरक्तचाप से पीड़ित था। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार बुध की दशा में क्रमश: चन्द्र व भौम की अन्तदर्शा चल रही थी। 2012-2013 में जातक अचानक निम्नरक्तचाप से पीड़ित हो गया है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार बुध की दशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही है।

2. D.o.B. 27.07.1954, T.o.B. 3:40 AM P.o.B. Madhubani, Darbh. (Bihar)



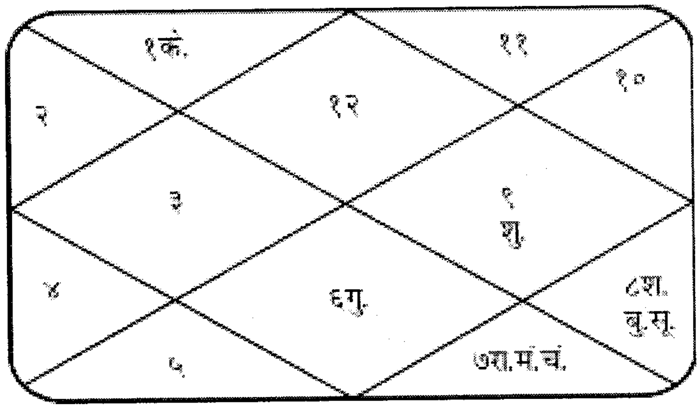
सप्तम भाव में राहु व भौम की संयुति। षष्ठ भाव में वृश्चिक राशि स्थित है। मंगल व चन्द्र का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध। लग्नेश बुध लग्न में है परन्तु चन्द्र, गुरु व केतु से युक्त तथा मंगल व राहु से दृष्ट। जातक 2004-2005 से उच्चरक्तचाप से पीड़ित है। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार शनि की दशा में भौम की अन्तर्दशा चल रही थी। जातक अभी भी रक्तचाप से पीड़ित है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार बुध की दशा में केतु की अन्तर्दशा चल रही है।

3. D.o.B. 10:02.1962, T.o.B. 8:00 PM P.o.B. Solan (H.P.)



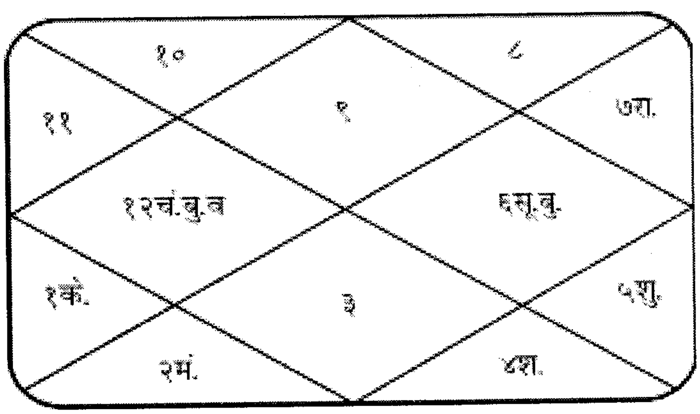
षष्ठ भाव में शनि, केतु, सूर्य, गुरु व भौम की संयुति। द्वादश भाव में कर्क राशि स्थित है। मंगल द्वारा चन्द्र दृष्ट। लग्नेश सूर्य षष्ठ में है तथा मंगल, शनि, बुध, गुरु व केतु से युक्त तथा राहु से दृष्ट। जातक 2008-2009 से निम्नरक्तचाप से पीड़ित है। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार राहु की दशा में शनि की अन्तर्दश चल रही थी। जातक अभी भी रक्तचाप से पीड़ित है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार राहु की दशा में बुध की अन्तर्दशा चल रही है।

4. D.o.B. 19.11.1957, T.o.B. 2:45 PM P.O.B. Solan (H.P.)



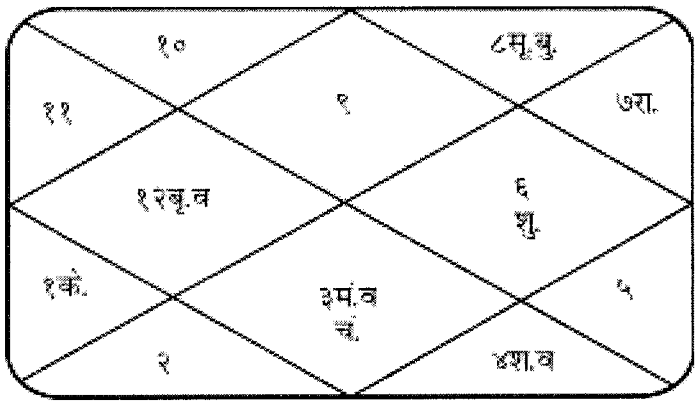
अष्टम भाव में भौम, चन्द्र व राहु की संयुति। वृश्चिक राशि में शनि, बुध व सूर्य स्थित है। मंगल व चन्द्र पर मेषराशि स्थित केतु की दृष्टि। जातक 2005-2006 से उच्चरक्तचाप से पीड़ित है। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार शनि की दशा में चन्द्र की अन्तर्दशा चल रही थी। जातक अभी भी रक्तचाप से पीड़ित है किन्तु अब कम है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार बुध की दशा में बुध की अन्तर्दशा चल रही है।

5. D.o.B. 22.09.1975, T.o.B. 2:00 PM P.o.B. Rishikesh (Uttarakhand)



षष्ठ भाव में भौम समगृही है। 12वें भाव में वृश्चिक राशि। 10वें भाव में कन्या राशि में बुध व सूर्य स्थित हैं, जो चतुर्थस्थ चन्द्र व गुरु को देख रहे हैं। 8वें भाव में कर्क राशि में शनि स्थित है। जातक 2004-2005 से निम्नरक्तचाप से पीड़ित है। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार शुक्र की दशा में शनि की अन्तर्दशा चल रही थी। जातक अभी रक्तचाप से प्राय: पीड़ित नहीं है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार सूर्य की दशा में बुध की अन्तर्दशा चल रही है।

6. D.o.B. 23.11.1975, T.o.B. 8:47 AM P.o.B. Bhopal (M.P.)



सप्तम भाव में भौम व चन्द्र की संयुति। 12वें भाव में वृश्चिक राशि में बुध व सूर्य स्थित है। 8वें भाव में कर्क राशि में शनि स्थित है। जातक 2001-2002 से उच्चरक्तचाप से पीड़ित है। उस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार शनि की दशा में गुरु की अन्तर्दशा चल रही थी। जातक अभी भी रक्तचाप से पीड़ित है। इस समय विंशोत्तरी दशा के अनुसार बुध की दशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही है।

प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष

* प्राक्कल्पना प्राय: सत्य।
* अधिकांश कुण्डलियों में चन्द्र व भौम का परस्पर युति अथवा दृष्टि सम्बन्ध।
* अधिकांश कुण्डलियों में सूर्य, शनि व राहु की चन्द्र व भौम के साथ युति व दृष्टि।
* वृश्चिक, कर्क व कन्या राशियों में चन्द्र व भौम की स्थिति कम रही। मिथुन राशि में चन्द्र व भौम की स्थिति अधिक रही।
* प्राय: चन्द्र व भौम की परस्पर दशा, अन्तर्दशादिकों में रोग की प्रबलता। साथ ही बुध, सूर्य, शनि व राहु की दशा, अन्तर्दशादिकों में रोग की प्रबलता में सहायक।
* लग्न व लग्नेश निर्बल होने पर रोग की प्रबलता पर प्रभाव कम।
* 6, 8 व 12 स्थानों में चन्द्र, भौम, सूर्य, शनि व राहु में से किसी न किसी की स्थिति

या दृष्टि रोग की प्रबलताकारक। चन्द्र व भौम की स्थिति लग्न, सप्तम व अष्टम में भी प्राय: देखी गई।

* षष्ठेश का चन्द्र व भौम से सम्बन्ध भी प्राय: देखा गया है।
* चंद्रमा और मंगल ग्रह प्राय: निर्बल रहे।
* कर्क, मेष व वृश्चिक राशियां पापग्रह से पीड़ित रही।
* कर्क, मेष व वृश्चिक राशियां 6, 8 व 12 स्थानों में रहने पर प्राय: रोग की प्रबलता रही।

रोग के निदानोपाय

* औषध के निर्माण एवं सेवन के लिए हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा एवं मूल नक्षत्र तथा सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु व शुक्र ये वार शुभ हैं। परन्तु जन्मनक्षत्र में चन्द्र के रहने पर वर्जित है। साथ ही शुभग्रह बलान्वित तथा ग्रहरहित 6, 7, 8 व 12 स्थान वाले शुभलग्न चुनना चाहिए।[1]

सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणां।
स्नानैर्दानैर्हवनबलिभिस्तत्र तुष्यन्ति यस्मात्॥

रक्तचाप के मुख्य कारक चन्द्र व भौम होने के कारण उनका उपचार करना चाहिए।

* **स्नानाविधि:**–चन्द्र के शान्त्यर्थ सफेदचन्दन चूर्ण, क्षीरिणी (खीरा) की जड़ का चूर्ण श्वेत पुष्प का चूर्ण, गोरोचन, दही इत्यादि से सोमवार या पूर्णिमा को स्नान करना चाहिए।[2] यथा

पञ्चगव्यगजदानविमिश्रै: शङ्खशुक्तिकुमुदस्फटिकैश्च।
शीत‌रश्मिकृतवैकृतहन्तु स्नानमेतदुदितं नृपतीनाम्॥

* भौम के शान्त्यर्थ रक्तचन्दन चूर्ण, नागजिह्वा की जड़ का चूर्ण, रक्त पुष्प का चूर्ण बिल्व, बला, चंपक, कटुतुम्बी, जटामासी इत्यादि के चूर्ण से भौमवार को स्नान करना चाहिए। यथा[3]

बिल्वचंपकबलारुणपुष्पैर्हिङ्गुकल्कफलिनीबकुलैश्च।
स्नानमद्भिरिह मांसियुताभिभौमदौस्थ्यविनिवारणमाह॥

* रोगशान्त्यर्थ पुष्य पूर्णिमा अथवा पुष्य नक्षत्र युक्त दिवस को बृहत्संहिता में वर्णित पुष्यस्नानाध्याय की विधि से 'पुष्यस्नान' करना चाहिए।

* **चन्द्र के शान्त्यर्थ दान**[4]

घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशङ्खौ चैव मौक्तिकसुवर्णे।
रजतं च सम्प्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशमनाय॥

1. मु.चि.पीयूषधाराटीका 1/15
2. मु.चि.पीयूषधाराटीका 4/16
3. मु.चि. पीयूषधाराटीका 4/16
4. मु.चि. पीयूषधाराटीका 4/16

* **भौम के शान्त्यर्थ दान**[1]

प्रवालगोधूममसूरिकाश्च वृषश्च ताम्रः करवीरपुष्पम्।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं दुष्टाय भौमाय सचन्दनं हि।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[2]
देवब्राह्मणवन्दनाद्गुरुवचः संपादनात्प्रत्यहं
साधूनामभिभाषणाच्छ्रुतिरवश्रेयस्कथाकर्णनात् ।
होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो
नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहा पीडनम्।।

1. मु.चि. पीयूषधाराटीका 4/16
2. गीता 6/17

कर्ण कण्ठ एवं नासिका रोग की ज्योतिषशास्त्रीय मीमांसा

डॉ. रश्मि चतुर्वेदी

''धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्''[1]

वैदिक दर्शन में जीवन का लक्ष्य पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति बतलाया गया है, और उसकी प्राप्ति का माध्यम स्वस्थ शरीर बतलाया गया है। इस जगत में मनुष्य का शरीर यदि स्वस्थ होगा तभी वह पुरूषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में कहे तो अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए भी स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। इसलिए महाकवि कालिदास ने कहा है–

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''[2]

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विचारों का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। विचार स्वस्थ तभी होगा जब व्यक्ति सम्यक् श्रवण करेगा। वैसे तो प्रत्येक अंग का पुष्ट होना शरीर की स्वस्थता का सूचक है परन्तु यदि हम ''कर्ण एवं कण्ठ'' की बात करें तो यह व्यक्ति की 'श्रवण शक्ति' एवं अभिव्यक्ति के परिचायक हैं। भारतीय परम्परा में श्रवण के माध्यम से मनन करने की परम्परा है तात्पर्य यह है कि श्रवण जितना स्पष्ट होगा अर्थाभिव्यक्ति उतनी ही सहज एवं सरल होगी। दूसरी भाषा में कहें तो व्यक्ति के ज्ञान की पुष्टता में कर्ण एवं कण्ठ सहायक होकर उसकी चेतना को जाग्रत करते हैं और सही चेतना मनुष्य का जगत से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होती है, तथा व्यक्ति अपना लक्ष्य सुगमता से प्राप्त कर लेता है।

नासिका व्यक्ति की 'घ्राणशक्ति' की परिचायक है। जगत में व्याप्त भिन्न-भिन्न गंधों का पूर्वानुमान करने में नासिका हमारी सर्वाधिक सहायता करती है। जीवन में यदि पूर्वानुमान उचित रीति से किया जाए तो भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। जिससे व्यक्ति की निर्णयक्षमता पुष्ट होती है। उचित समय पर उचित रीति से किया गया निर्णय व्यक्ति की प्रगति में सहायक होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रवण शक्ति के लिए कर्ण, 'अभिव्यक्ति' के लिए कण्ठ एवं घ्राणशक्ति के लिए नासिका का पुष्ट होना आवश्यक है।

---

1. चरकसहिंता
2. कुमारसम्भवम् 5/33

ज्योतिषशास्त्र में कर्ण कण्ठ एवं नासिका से सम्बन्धित रोगों के योगों का वर्णन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में मिलता है।

कर्णरोग–

बहिरा होना, कम सुनाई पड़ना, कान कटना, कान में दर्द होना या मवाद पड़ना आदि सब कर्ण रोग होते हैं। जातक ग्रन्थों में उक्त सभी प्रकार के कर्ण रोगों का विचार किया गया है। कान का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह शनि होता है। तथा बुध एवं शुक्र उसके सहायक ग्रह माने गये है। कुण्डली में तृतीय एवं एकादश भाव दोनों कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा पंचम एवं नवम भाव उसके सहायक होते हैं। कुछ आचार्य द्वितीय भाव से ही कर्ण एवं कण्ठ का विचार करते हैं। इस प्रकार शनि, बुध एवं शुक्र इन तीनों ग्रहों तथा द्वितीय तृतीय, पंचम, नवम एवं एकादश भावों एवं उनके स्वामियों पर पाप प्रभाव से, उक्त ग्रह एवं उक्त भावों के स्वामियों के दु:स्थान में स्थित होने से या निर्बल होने से कर्णरोग होते हैं। यदि कर्णरोगकारक ग्रहों पर किसी शुभ शुभग्रह की दृष्टि हो तो ये रोग चिकित्सा, उपचार द्वारा साध्य हो जाते हैं।

बहिरापन एवं उसके योग–

कानों को कम सुनाई पड़ना बहिरापन कहलाता है। जातक के जीवन में बधिरता सूचक योग इस प्रकार बतलाए गए हैं–

(1) तृतीयेश पापग्रह एवं सूर्य मंगल या शनि के साथ हो[1]

(2) शनि से चतुर्थ में बुध हो तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो[2]

(3) पूर्णचन्द्र एवं शुक्र अपने शुक्र के साथ हो।[3]

(4) बुध एवं षष्ठेश पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[4]

(5) षष्ठेश त्रिकस्थान में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हों।[5]

(6) तृतीय एकादश एवं त्रिकोणस्थानों में पापग्रह शुभग्रहों की दृष्टि से रहित हो।[6]

कम सुनाई देने के योग–

वृद्धावस्था या किसी योग के प्रभाव के कारण कम सुनाई पड़ता है। जातक ग्रन्थों में इसके भी कुछ योग बतलाए गए हैं–

---

1. दैवज्ञाभरण प्रकाश II - श्लो. 4

2-6. जातकतत्व प्रकीर्णतत्व सू. 279-85

(1) बुध के साथ शुक्र द्वादश स्थान में हो तो बायें कान से कम सुनाई देता है।[1]

(2) नवम, एकादश, तृतीय एवं पंचम में पापग्रह हो तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हों।[2]

(3) द्वितीयेश एवं मंगल लग्न में हो।[3]

(4) मेष, वृष एवं कर्क राशियों को छोड़कर किसी भी अन्य राशि में लग्न में चन्द्रमा हो।[4]

कान कटने के योग–

कई बार लड़ाई-झगड़े या दुर्घटना में कान कट जाते है। इसके प्रमुख योग निम्नलिखित है–

(1) सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तृतीय, नवम, पंचम, सप्तम में और शुभ ग्रह की दृष्टि से रहित हो।[5]

(2) चन्द्रमा से सप्तम में शनि हो तथा शुक्र एवं सूर्य लग्न में हो।[6]

(3) नीच राशि में राहु के साथ शुक्र हो।[7]

(4) कारकांश में केतू हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[8]

कान में दर्द, मवाद पड़नः, बहना आदि के योग-

इन सब कर्ण रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव, तृतीयेश ग्रह पर पापप्रभाव से किया जाता है। कुछ आचार्यो ने इसका विचार द्वितीय एवं एकादश भाव से भी किया है। जातक ग्रन्थों में उक्त कर्णरोगों के योग इस प्रकार हैं–

(1) मंगल एवं गुलिक तृतीय भाव में तो कान में दर्द होता है।[9]

(2) तृतीय स्थान में पापग्रह पापदृष्ट हो तो कान में दर्द होता है।[10]

(3) तृतीयेश क्रूर ग्रहों के षष्ठयंश में हो तो कान सड़ जाता है।[11]

---

1. जातकतत्व प्रकीर्णतत्व सू - 282
2. बृहद्जातक अ 23 श्लो. - 11
3. जातक पारिजात अ - 11 श्लो. - 67
4. सारावली अ 30 श्लो - 14

5-7. जातकत्व प्रकीर्णतत्व सू 286-88।

8. जैमिनिसूत्र अ. 1 पाद 2 सू 32।

9-11. जातक पारिजात अ. 6 श्लो. - 66-67।

(4) तृतीय भाव में शनि एवं गुलिक हो तो कान में मवाद पड़ जाता है।[1]

(5) लग्न में धनेश एवं मंगल हो।[2]

(6) तृतीयेश की राशि का स्वामीं जिस राशि तथा नवांश में हो उसका स्वामी केन्द्र में हो और वह पापग्रह से दृष्ट या युत हो।[3]

(7) द्वितीय या द्वादश स्थान में शुक्र या मंगल हो।[4]

(8) लाभेश पापग्रहों से दृष्ट या युत हो।[5]

(9) तृतीय भाव में गुलिक के षष्ठ्यंश में मंगल हो।[6]

नासिका रोग–

नाक कटना, नक्की चलना, पीनस आदि सब नासिका रोग कहलाते हैं। ये रोग प्रायः प्राणघातक नहीं होते हैं, इसलिए जातक ग्रन्थों में यत्र-तत्र इनकी व्याख्या की गई है–

(1) मंगल, शुक्र एवं शनि ये तीनों एक स्थान में हो तो जातक की नक्की चलती है।[7]

(2) षष्ठस्थान में चन्द्रमा, अष्टम में शनि, द्वादश में पापग्रह हो तथा लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो तो पीनस रोग होता है।[8]

(3) षष्ठ स्थान में शुक्र तथा लग्न में मंगल हो तो नाक कट जाती है।[9]

कण्ठ रोग–

गलगण्ड, गण्डमाला एवं गले के अन्य विकारों को कण्ठ रोग कहते हैं। ये रोग प्रायः सूर्य की दशा में शुक्र के अन्तर में या शुक्र की दशा में सूर्य के अन्तर में होते हैं, तृतीय भाव से मुख्यतया इन रोगों का विचार किया जाता है। तृतीय स्थान में पापग्रह होने पर तथा तृतीयेश के पापग्रहों के साथ होने पर यह रोग होते हैं। इन रोगों के योग इस प्रकार है–

गलगण्ड एवं गण्डमाला के योग–

(1) सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।[10]

1-6. गदावली प्रकरण 2 श्लो. - 17-20
7. वीरसिंहावलोक - नासारोगाधिकार पृ. 256
8. सर्वार्थचिन्तामणि अ. 5 श्लो. 41।
9. जातकतत्वप्रकीर्णतत्व - सू. 289
10. सारावली अ. 42 श्लो. 16

(2) शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो।[5]

(3) सूर्य के साथ लग्नेश त्रिकस्थान में हो।[6]

(4) सूर्य एवं मंगल षष्ठ या द्वादश स्थान में हो शुभग्रहों की दृष्टि से रहित हों।[7]

(5) चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो जलजगण्ड होता है।

(6) लग्नेश, षष्ठेश एवं चन्द्रमा ये तीनों त्रिक-स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।

(7) लग्न में मकर का नवांश हो उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हों तो गले में गाँठ होती है।

गले के अन्य रोगों के योग–

(1) तृतीय भाव में नीचराशिगत, शत्रुराशिगत या अन्तर्गतग्रह हो और उसे पाप ग्रह देखता हो।

(2) तृतीय भाव में पापग्रह हो तथा वह गुलिक के साथ हो।

(3) केन्द्र या त्रिकोण में राहू या केतू हो।

(4) तृतीयेश बुध के साथ हो।

(5) चन्द्रमा चतुर्थ भाव में चतुर्थ भाव के नवांश के स्वामी एवं पापग्रह के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है।

इस प्रकार जातक की कुण्डली में उक्त कर्ण, नासिका एवं कण्ठ के योगों में से कोई योग उपस्थित हो तो रोग का अनुमान सरलतापूर्वक किया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र में इन रोगों के शमनार्थ दान, स्नान, मन्त्र, मणि एवं औषधि के माध्यम से उपचार बतलाए गए हैं। रोगों के उपचार में सूर्य की उपासना लाभदायक हुआ करती है। भगवान शिव को भी प्रथम वैध माना गया है अतः रोगोपचार में शिवोपासना भी लाभदायक हुआ करती है। रोगोत्पत्ति का एक कारण पूर्वार्जित कर्मों का फल भी कहा गया है यथा–

"पूर्वार्जित कर्म व्याधिरूपेण जायते"

किन्तु साधना से इसे नियन्त्रित किया जा सकता है। अतः सम्यक् श्रवण, सम्यक् मनन से सम्यक अर्थ का ग्रहण कर यदि हम सम्यक् अभिव्यक्त करेगें तो मन भी शिवसकल्पों से युक्त होगा जिससे रोगप्रकोप को कुछ हद तक नियन्त्रित किया जा सकता है।

---

5. तत्रैव अ. 42 श्लो. 42
6. जातकालंकार अ. 2 श्लो. 23
7. जातकतत्व पष्ठ विवेक सू. 41-42

पक्षाघात कारण लक्षण एवं निवारण

डॉ. बिजेन्द्र शर्मा

पक्षाघात बहुत ही गंभीर बीमारी है। विश्व में हर 45 सेकण्ड में किसी न किसी को स्ट्रोक हो जाता है। एक वर्ष में लगभग 7,00,000 लोग पक्षाघात से पीड़ित होते हैं। इतना ही नहीं विश्व में हर तीन मिनट में स्ट्रोक के एक रोगी की मौत हो जाती है और पक्षाघात हृदयरोग और कैंसर के बाद मृत्यु का विश्व में तीसरा सबसे बड़ा कारण है। हमारे देश में 60 वर्ष से ऊपर की उम्र के लोगों में मौत का दूसरा सबसे बड़ा कारण स्ट्रोक है। अत: आधुनिक मत के अनुसार पक्षाघात को जानना आवश्यक है।

क्या है पक्षाघात ?

- दिमाग के किसी भाग में खून की नस जाम होने से उस भाग को नुकसान पहुंच सकता है, इसे पक्षाघात कहते हैं। अचानक मस्तिष्क के किसी हिस्से में रक्त आपूर्ति रुकना या मस्तिष्क की कोई रक्तवाहिका फट जाना और मस्तिष्क की कोशिकाओं के आस-पास खून भर जाने से स्ट्रोक यानी पक्षाघात होता है।
- मस्तिष्क में रक्त प्रवाह कम होने, अचानक रक्तस्राव होने से मस्तिष्क को दौरा पड़ जाता है।
- स्ट्रोक में शरीर के एक हिस्से को लकवा मार जाता है या एक तरफ के किसी हिस्से को नुकसान पहुंच सकता है। मस्तिष्क में कोई रक्तवाहिका लीक हो जाती है, तब भी स्ट्रोक हो सकता है।
- स्ट्रोक को सेरिवौस्कुलर दुर्घटना या सीवीए के नाम से भी जाना जाता है।

पक्षाघात के प्रकार–

- पक्षाघात के कारण दीर्घकालीन विकलांगता हो सकती है या फिर हाथ-पांव कामकरना बन्द कर सकते हैं।
- स्ट्रोक 20 वर्ष में सिकल सेल एनीमिया से पीड़ित लोगों की मौत का कारण बनता है।

- 15 से 59 आयुवर्ग में मृत्यु का पांचवां सबसे बड़ा कारण है।
- रोगी को देखने, बात करने या बातों को समझने यहां तक की खाना निगलने में भी परेशानी होने लगती है।
- यदि रोगी का पक्षाघात के दौरान ब्रेन का बहुत बड़ा भाग प्रभावित हुआ है तो श्वास संबंधित समस्याऐं भी आ सकती है, या फिर बेहोशी आने लगती है।
- पक्षाघात के कारण अंधता होने का खतरा भी बढ़ जाता है।

क्यों होता है पक्षाघात–

- उच्च रक्तचाप के 30 से 50 आयुवर्ग के रोगियों को स्ट्रोक का जोखिम रहता है।
- मधुमेह के रोगियों में स्ट्रोक का जोखिम 2–3 गुना अधिक रहता है।
- ब्लड प्रेशर, शुगर, हृदय रोग जैसी समस्याओं के कारण।
- धूम्रपान, जंक फूड, ज्यादा तैलीय भोजन का आदी होना।
- मस्तिष्क की किसी धमनी के संकीर्ण या अवरुद्ध होने के कारण।
- अधिक ठंडे मौसम में बढ़ा हुआ कॉलेस्ट्रोल या उच्च रक्त कॉलेस्ट्रोल स्तर।
- पौष्टिक आहार न लेना।
- अधिक मोटापा।
- शराब, सिगरेट और तम्बाकू का सेवन अधिक करना।
- नशीली दवाइयों का सेवन।
- शारीरिक सक्रियता न होना।
- अनुवांशिक या जन्मजात परिस्थितियां।
- रक्त संचार तंत्र के विकार।
- अचानक अज्ञात कारण से भी गंभीर सिरदर्द।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने मनुष्य को कष्ट देने वाले सभी विषयों का अत्यन्त गहनता से अध्ययन किया व उसके परिहार के उपायों का अन्वेषण किया। अनिष्ट का परिहार व इष्ट की प्राप्ति ही प्राचीन आचार्यों के प्रत्येक शोध का मुख्य उद्देश्य रहा था। उसी प्रकार से प्रत्येक रोग के कारण, लक्षण एवं निवारण के उपायों को भी खोजा व अपने बहुमूल्य ग्रन्थों में उन्हें

संकलित किया। कालान्तर में अनेक ग्रन्थ विलुप्त हो गये परन्तु उपलब्ध ग्रन्थों से भी हमें बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें से ज्योतिष व आयुर्वेद के समायोजन से निर्मित एक ग्रन्थ है–''वीर सिंहावलोक''। इस ग्रन्थ में पक्षाघात रोग का समावेश वातरोगाधिकार में किया गया है। अध्याय में वातरोगों के 80 भेद बताये गये हैं।

वातरोग उत्पन्न होने के कारणों में वीरसिंहावलोक ग्रन्थ में चिन्ता, शोक, मर्मस्थानों में चोट, नियमित रात्रि जागरण करने से, अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करने से, शोक व किसी लम्बी व्याधि से जायमान शारीरिक दुर्बलता से, अत्यधिक व्यस्तता के कारण, मलमूत्रादि वेगों को रोकने से, मोटर आदि वाहनों से दुर्घटना ग्रस्त होने के फलस्वरूप भी पक्षाघातादि वातरोग होते हैं। और आधुनिक चिकित्सक भी पक्षाघात के कारणों में इसी प्रकार से विवेचन करते हैं जैसा कि इस श्लोक में वर्णित है–

रुक्षशीताल्पध्वन्नव्यावायाति प्रजागरैः।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादति।
लंघन प्लवनात्यर्थ व्ययग्राममतिचेष्टितैः।
धातूनां संक्षयाच्चिंताशोक रोगादिकर्षणात्।
वेगसंधारणायासादतिधाताद भोजनात्।।
मर्मवेधापजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतर्पणात्।।

–वीरविंहावलोक, वातरोगाधिकार श्लोक 14–16

मुख्यतया पक्षाघात मस्तिष्क में तन्त्रिकातन्त्रों के नियन्त्रण की क्षमता समाप्त होने के कारण होता है। तंत्रिकाऐं रीढ़ की हड्डि के प्रत्येक हिस्से से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में एक बहुत बड़े जाल की तरह फैली होती हैं और उन सभी का मूल स्रोत व नियन्त्रण मस्तिष्क द्वारा ही होता है। अत: कई बार रीढ़ की हड्डी पर लगी गम्भीर चोटों के कारण भी लकवा हो जाता है। ग्रन्थ में वर्णन है कि जब शरीरस्थ वायु प्रकुपित होती है तो यह प्रकुपित वायु शरीर के उन रिक्त स्थानों में जिनमें स्निग्ध पिच्छिल आदि गुणों से युक्त द्रव्य भरे होते हैं, प्रवेश कर जाती हैं वहाँ जाकर स्निग्धांशों को सुखाकर अनेक वात व्याधियाँ एकांशिक अथवा सर्वांगिक रूप में उत्पन्न होती है। इसी प्रकार की प्रक्रिया मस्तिष्क में वायु के प्रकुपित विकार के कारण स्निग्ध भाग जो तंत्रिकाओं को नियन्त्रित करता है वह सूख जाता है व पक्षाघात को उत्पन्न करता है। इस प्रकार का वात का प्रकोप है।

गहन चिन्ता आदि पूर्वोक्त कारणों से होता है–

देहे स्त्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वानिलो बली।
करोति विविधान्त्याधीन्सर्वागैकांगसंश्रयान्।। –वाताधिकारः, श्लोक–17

ग्रन्थ में पक्षाघातादि वातव्याधियों के लक्षणों के सन्दर्भ में विस्तार से वर्णन मिलता है जो आधुनिक चिकित्सकों द्वारा पूर्व में बताये गये लक्षणों के समान व उससे भी कहीं अधिक विस्तृत है–

संकोचः पर्वणां स्तंभो भंगोऽस्थ्नां पर्वणामपि।
लोमहर्षः प्रलापश्च पारिपृष्ठारीरोग्रहः।।
खोज्यं पांगुल्यकुब्जत्वे शोषोऽगानामनिद्रता।
गभ्रशुक्ररजोनाशः स्पंदनं गात्रसुप्तता।।
शिरोनासाक्षिजत्रणां ग्रीवायाश्चापि मंजनम्।
भेदस्तोदार्तिरक्षिपो मोहश्चायास एव च।।

अर्थात् प्रत्येक छोटी या बड़ी सन्धियों के जोड़ों में संकोच व खिंचाव होता रहता है। अस्थियों के टूटने की सी स्थिति बनती है। रोमहर्षा (रोंगटे) खड़े हो जाते हैं। हाथ, पैर और कमर, पीठ आदि स्थानों में जकड़न आ जाती है। अंगशोध, अंग के सूखने, पतले पड़ने की स्थिति आ जाती है। स्पन्दन (शरीर कंप-कपाना) गात्रसुप्तता (त्वचा से स्पर्श संवहन न होना, सुन्न पड़ जाना), सिर, नासिका और नेत्रादि ऊर्ध्व जत्रुज प्रत्यगों का एवं ग्रीवा का जकड़ जाना, वेदना होना, आक्षेप-खिंचाव पैदा होना, शरीर में क्लम, श्रम-थकावट का अनुभव होते रहना आदि लक्षण उत्पन्न होते रहना और कभी इन लक्षणों के समाप्त होना इस बात का द्योतक है कि भविष्य में कोई स्थायी रूप में वातव्याधि होने वाली है।

पक्षाघात का ज्योतिषीय विवेचन–

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि पक्षाघात का संबंध वात तन्त्रिकातन्त्र, रीढ़ की हड्डी व मस्तिष्क से है। इन सभी के कारक ग्रहों का पाप संबंध होना व पीड़ित होना ही पक्षाघात का कारण हो सकता है। विशेष रूप से शनि ही वात व्याधियों का कारक सभी जातक ग्रन्थों में एकमत से स्वीकार किया गया है–

परुषरोमकचोऽनिलात्मा। –बृहज्जातक, ग्रहलक्षणाध्याय

किसी भी रोग के ज्योतिषीय विश्लेषण हेतु सर्वोत्तम शोधकार्य किया गया श्री लालबहादुर शास्त्री विद्यापीठ, नई दिल्ली ज्योतिषविभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष व ज्योतिष शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् स्वर्गीय डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी जी द्वारा खोजे गये योगों से अधिक रोग संबंधितयोगों को जातक ग्रन्थों के पूर्णतया आलोढ़न के उपरान्त पक्षाघात के निम्न योग उन्होंने अपनी पुस्तक ''ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार'' में प्रस्तुत किये हैं–

(1) शनि के साथ चन्द्रमा का ईसराफ योग हो। गदावली, अध्याय 3, श्लोक 42-43

(2) शनि के साथ क्षीण चन्द्रमा का ईसराफ योग।

(3) चन्द्रमा अस्तगत हो।

(4) षष्ठेश पापाक्रान्त हो, गुरु से दृष्ट न हो तथा षष्ठभाव में पापग्रह हो।

इन चार पक्षाघात योगों के अतिरिक्त भी अनेकों योगों का वर्णन किया जिनके कारण की वातव्याधियों होती है। विशेषत: शनि जब दुष्ट हो, नीचस्थ हो, पापयुक्त हो, मंगल या सूर्य से दृष्ट हो पीड़ित हो तो वातव्याधियां उत्पन्न हो जाती है। जलतत्व कर्कराशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि के कारण भी पक्षाघात जैसी भयानक वातव्याधियों का निर्देश वीरसिंहावलोक ग्रन्थ में प्राप्त होता है–

अतिमारुमरोगार्त्तः परस्वहारी विलोमतिचेष्टः।
कर्कटस्थे भानौ स्वपुत्रदृष्टे पुमान्पशुनः वातपित्तोद्भवा पीडा........................

वाताधिकार, श्लोक 1–2

सन्दर्भ में अनेक योगों का वर्णन ग्रन्थ में प्राप्त होता है–

यदि किसी जातक के लग्न स्थान में शनि हो और त्रिकोण स्थान में अथवा सप्तम स्थान में मंगल हो तो भी वातव्याधियाँ होती हैं।

यदि लग्न स्थान में गुरु विराजमान हों और सप्तम स्थान में शनि बैठा हो तो भी वातव्याधियाँ बनी रहती हैं।

षष्ठ स्थान में नीच का शनि हो तो भी कोई न कोई व्याधि बनी ही रहती है।

यदि व्यय स्थान में शनि तथा वात कृष्ण पक्ष का क्षीण चन्द्रमा युति रूप हो तो भी वात व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

शनि पर मंगल की दृष्टि भी वात व्याधियों को उत्पन्न करती हैं।

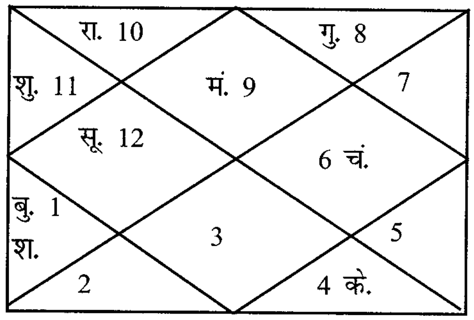
इस प्रकार से साक्षात् पक्षाघात के योग तो जातक ग्रन्थों में अत्यन्त अल्प होते हैं परन्तु अन्य वातव्याधियों से संबंधित योगों के द्वारा ही पक्षाघात के लक्षणों को भी जानना होगा। अत: अनेक पक्षाघात से ग्रसित जातकों की उदाहरण कुण्डलियों का विवेचन करने के उपरान्त ही कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

आज के युग में सभी प्रकार की सूचनाओं का सबसे उत्कृष्ट साधन अन्तर्जाल (Internet) हो चुका है। अत: उसमें विश्व के अनेक ऐसे महान लोग जो कि इस रोग से पीड़ित हो चुके है, उनकी जीवनी तथा जन्म से सम्बन्धित विवरण प्राप्त हो जाता है उनमें कुछ की जन्म कुण्डलियों का स्वरूप यहाँ दिया जा रहा है जिनमें कि पूर्वोक्त कुछ योग व जातक ग्रन्थों में वर्णित वातव्याधि से संबंधित योग घटित होते हैं। ये सभी लकवे से ग्रसित रहे हैं।

1. Max Brito, अमेरिका का अत्यन्त प्रसिद्ध रग्बी खिलाड़ी

जन्म दिनांक 8 अप्रैल 1971 स्थान Abidijan, ivory coast

नीच राशिस्थ पापी शनि व त्रिकोण में मंगल

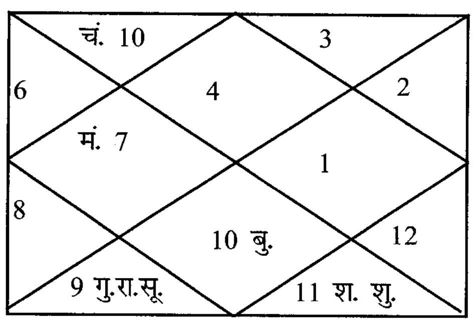


2. सैयद अहमद् याशीन, 'हमास' संगठन का संस्थापक

नाम Al -Jura, British Nadate for palertino

शनि से पीड़ित चन्द्र व पापी शनि से त्रिकोण में मंगल

जन्म दिनांक 1 जनवरी 1937, 7:15 pm

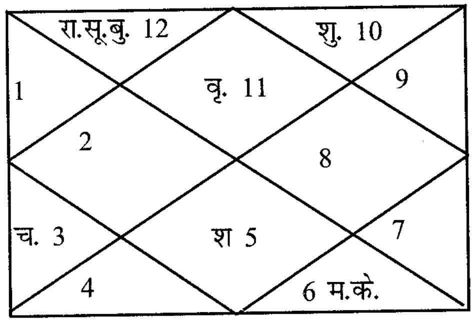


3. Jeddy Pendergrass

जन्म - मार्च 26, 1950

Philedelphia, United States

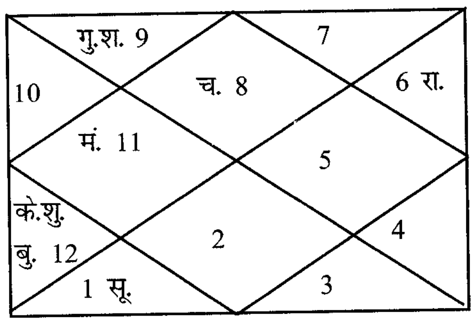
लग्नस्थ गुरु पर शनि की दृष्टि



4. Elena Mukhina, Moscow, Russia, USSR

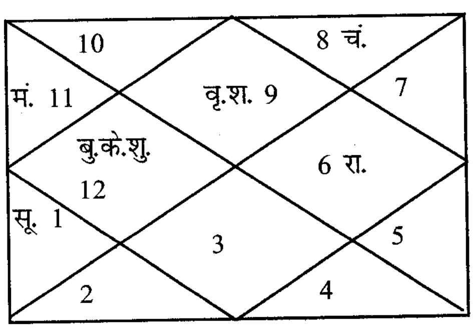
जन्म - 1 जून, 1960

सन् 1978 में जिम्नास्टिक की विश्वविजेता रही। बाद में लकवाग्रस्त



5. John Carter, Coggeshall Essese Country

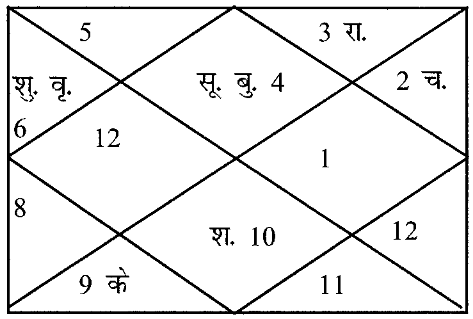
जन्म - 31 जुलाई, 1815



अपने समय के सबसे प्रसिद्ध चित्रकार, लकवा होने के बाद भी केवल मुंह से ब्रश द्वारा अप्रतिम चित्रों का निर्माण किया।

6. Ray Campanella, Philadelplia Pennsy lcania, United States

जन्म - 19 नवम्बर, 1921



बेसबॉल के महानतम खिलाड़ी अनेकों वर्षों तक लकवाग्रस्त रहे फिर मृत्यु।

इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण व उनके जन्म का विवरण भी उपलब्ध है जिनको कि पक्षाघात हुआ जैसे Stephen Hawking (8 जनवरी, 1942)। इस प्रकार की कुण्डलियों का यदि गहन रीति से परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया जाए तो निश्चित रूप से एक अच्छे शोध का प्रतिपादन किया जा सकता है।

प्राचीन आचार्यों ने न केवल रोग के कारण, लक्षणादि का विवेचन किया अपितु उससे भी कहीं अधिक बढ़कर उसके उपाय पर अधिक विचार किया। चरकसंहिता से लेकर गदावली तक ग्रन्थों की विस्तृत परम्परा में पक्षाघात आदि वातव्याधियों के शमन के अनेक उपायों का वर्णन मिलता है जैसे वीरसिंहावलोक ग्रन्थ में–

1) **गुरुं प्रत्यर्थी वातरोगी शन्नारेदेवीरिति मन्त्रेण जपं कुर्वीत इति उमामहेश्वरसंवादे अभिधनात्।** वीरसिंहावलोक, पृष्ठ 228

2) आचार्य वाचस्पति के वचनानुसार "आवात" मन्त्र अथवा "अग्निरस्मीति" मन्त्र का 10,000 संख्या में होम करना चाहिए। पृष्ठ 228

3) कर्कराशि में स्थित सूर्य और शनि से दृष्ट होने से उत्पन्न व्याधियों का प्रतिकार एवं शान्त्यर्थ जप होम दानादि करना चाहिए। शनि में केतु की अन्तर्दशा में उत्पन्न वातज (पक्षाघात आदि) व्याधियों को शान्त करने के लिए जप होम दान आदि करना चाहिए। तिल, घृत, कुश, काश एवं अन्य समिधाओं का हवन करना चाहिए। बकरे का दान एवं स्वर्णदान करना चाहिए। शनि को प्रिय वस्तुओं यथा काले तिल, अंजन (काला सुरमा) आदि औषधियों को पानी में मिलाकर स्नान करना चाहिए। राजावर्त (लालवर्त) नामक उपरत्न की अंगूठी पहनना चाहिए।

4) वातादि रोग निवारण के लिए वीरसिंहावलोक ग्रन्थ में आयुर्वेदीय उपचार में नारायण तैल का प्रयोग एवं बनाने की विधि बताई गई है। जिसमें शताधिक औषधियों के मिश्रण की बात कही है। इस प्रकार से अनेकों उपाय विविध ग्रन्थों में वर्णित है जिनके प्रायोगिक विवेचन की आज भी महती आवश्यकता है। इस विषय में शोध की भी महान् सम्भावनाएँ हैं।

पक्षाघात रोग की ज्योतिषीय समीक्षा

डॉ. फणीन्द्र कुमार चौधरी

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धिः कालेनात्मनि विन्दति॥[१]

गीता वचनानुसार–ज्ञान से पवित्र दुनिया में कोई वस्तु नहीं है, ज्ञान अपवित्र होने पर व्याधि का रूप धारण करने लगता है। ज्ञान के द्वारा ही कार्यों की सिद्धि होती है। अपवित्र कार्य मन तथा शरीर को प्रभावित करता है तथा रोग उत्पन्न करता है।

शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नैव संशयः।
मानसाज्जायते व्याधिः शरीरो नैव संशयः॥[२]

अर्थात् जब शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है तब मन में भी व्याधि होगी, इसी प्रकार मन में व्याधि उत्पन्न होने पर शरीर में भी व्याधि होगी, इसमें संशय नहीं है। मन को स्वस्थ बनाने के लिए शरीर को भी स्वस्थ बनाना आवश्यक है। स्वस्थ की परिभाषा आचार्यों ने इस प्रकार दी है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् जिस व्यक्ति के त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) सम हैं, जिसकी अग्नि और धातु सम है, मल और क्रिया सम है जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न (निर्मल) है वह स्वस्थ है। ये स्वास्थ्य भी शुद्ध कर्म के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा रोग भी कर्मानुबन्ध से होता है पक्षाघात रोग पूर्वार्जित किस कर्म से उत्पन्न होता है। यथा–

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्।
निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात् सत्यवर्तिनाम्॥[३]

अर्थात् सभा में पक्षपात करने वाले को पक्षाघात होता है। उसे सात्विक ब्राह्मण को बारह भर (तोला) स्वर्णदान देकर प्रायश्चित्त करना चाहिए।

रोग की सम्भावना

कोई भी रोग वातावरण के कुपित होने पर तथा मिथ्या आहार विहार से होता है। पक्षाघात रोग शरीर के किसी भी अङ्ग में हो सकता है। आँख का पक्षाघात, अंगुलियों का पक्षाघात, जीभ का पक्षाघात, सीधे हाथ एवं पैर का पक्षाघात, वाम भाग का पक्षाघात निम्माङ्ग (अर्द्धाङ्ग) का पक्षाघात। पक्षाघात में शरीर के अङ्ग मुड़ जाते हैं और उनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अङ्गों

में रक्त का सञ्चार तो रहता है, परन्तु इसकी गति बहुत क्षीण रहती है। प्रायः रोगी पराश्रित हो जाता है, वह अपने को अपाहिज तथा दूसरों की दया का पात्र समझने लगता है। प्रत्येक रोगी को यह समझ लेना चाहिए कि यह रोग सर्वथा असाध्य नहीं है। किसी कुशल चिकित्सक के निर्देशन में यह ठीक भी हो सकता है।

पक्षाघात रोगोत्पत्ति का कारण

कुछ ऐसे प्रधान कारण हैं जो पक्षाघात को जन्म देते हैं–

१. विद्युत् करंट अनेक बार लगने से मृत्यु न होकर कोई अङ्ग विशेष में झटका लगने से निष्क्रिय हो जाता है। प्रत्येक शरीरधारी मनुष्य के शरीर में बारह बोल्ट की विद्युत् प्रवाहित होती रहती है। यदि इससे दुगुनी या तिगनी विद्युत् शरीर में प्रवाहित हो जाय तो पक्षाघात रोग का होना सम्भव है। अति प्रसन्नता या विषाद की स्थिति में हृदय द्वारा रक्त का प्रवाह अधिक गति से होने लगता है, जिससे शरीर के किसी अंग विशेष में विद्युत् का घर्षण बढ़ जाता है तथा वह अंग पक्षाघात रोग से ग्रस्त हो जाता है। अत एव अति प्रसन्नता या विषाद के अवसरों पर अधिक भावुक नहीं होना चाहिए। यथासम्भव समभाव विचरण करना चाहिए और अधिक संग्रह परिग्रह तथा सम्बन्धों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, इससे शरीर एवं मन स्वस्थ रहता है।

२. किसी दुर्घटना या मार-पीट के कारण अंग विशेष में गहरी चोट लग जाने से भी उस अंग की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अत एव ऐसी स्थिति में उस अंग की चिकित्सा तुरंत करानी चाहिए। लम्बी उपेक्षा पक्षाघात को जन्म दे सकती है।

३. अधिक शीत या ठंड लग जाने से भी अंगों में संज्ञाशून्यता आ जाती है। प्रायः जो पुरुष ठंड में खुले आकाश के नीचे शून्य से भी कम सेल्सियस तापमान पर काम करते हैं और उनके शरीर की उष्णता आयु के प्रमाण से कम होती है। इस स्थिति में भी पक्षाघात होने की सम्भावना अधिक रहती है।

४. जो मनुष्य प्रायः तनाव ग्रस्त रहते हैं उनको भी पक्षाघात रोग होने की सम्भावना रहती है।

५. यौन असंतुष्टि भी पक्षाघात का कारण बनती है।

६. वायुविकार से भी पक्षाघात की सम्भावना रहती है, अत एव भोजन में वात-शामक वस्तुएँ जैसे हींग तथा लहसुन का प्रयोग करना चाहिए।

ज्योतिषीय पक्षाघात रोग का योग

वात, पित्त एवं कफ इन तीन विकारों से निम्नाङ्कित रोग उत्पन्न होते हैं–आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, सर्दी, कफ, खाँसी, श्वास, क्षय, ज्वर, पाण्डु, सूखा,

स्थौल्य, मूर्च्छा, मिरगी, फोड़ा, फुन्सी, घाव, दाद, खाज, खुजली एवं कुष्ठ आदि रोग शरीर के किसी एक निश्चित अङ्ग में होते हैं। अतः फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में उन्हें अङ्गों के रोग कहा गया है तथा आम वात शूल आदि रोग शरीर के किसी एक निश्चित अंग में न होकर कहीं भी हो सकते हैं। अतः इन्हें अंगों के रोगों से भिन्न माना गया है तथा वातपित्तादि के रोग कहा गया है। जातक ग्रन्थों में इन रोगों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है तथा इन रोगों की सूचना देने वाले ग्रह योगों पर पर्याप्त रूप से वर्णन किया गया है।

वातरोग

वायुविकार से उत्पन्न समस्त रोगों को वातरोग कहा जाता है। इनमें आमवात, शूल एवं पक्षाघात प्रमुख हैं। जातकग्रन्थों में इन रोगों का विचार करने के लिए अनेक योग बतलाये गये हैं, जिनके आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक योग में उत्पन्न व्यक्ति को आमवात शूल, पक्षाघात या अन्य कोई वातरोग होगा।

आमवात के योग

इस रोग में शरीर के जोड़ों में दर्द तथा सूजन रहती है। इस योग का विचार मुख्यतया गुरु से किया जाता है। जब गुरु अनिष्ट स्थान में होता है तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग के सूचक ग्रह निम्नलिखित हैं–

१. गुरु त्रिक् स्थान में हो।[४]

२. गुरु एवं लग्नेश दोनों त्रिक् स्थान में हों।[५]

शूलयोग

शरीर के किसी अङ्ग के तीव्रतर दर्द होने को शूल कहते हैं। सिरशूल, हृदयशूल एवं उदरशूल या शरीर के एक निश्चित अंग से सम्बन्ध होने के कारण से उस अंग सम्बन्धी शूल योग कहलाता है–

१. कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।[६]

२. सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।[७]

३. लग्नेश शत्रु या नीच राशि में हो, मंगल चतुर्थ भाव में हो तथा शनि पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[८]

४. सूर्य-चन्द्रमा एवं मंगल एक साथ हो,[९] इत्यादि अनेक योग हैं।

सन्धिमूल के योग

इस रोग में मुख्यतया शरीर के जोड़ों में दर्द रहता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के

प्रभाववश होता है–

१. रात्रि का जन्म हो तथा पञ्चम भाव में पापाक्रान्त सूर्य हो।[१०]

२. रात्रि का जन्म हो तथा दग्ध चन्द्रमा को केन्द्रगत शनि देखता हो[११]

३. दग्ध चन्द्रमा का शनि से ईसराफ योग हो।[१२]

४. दिन का जन्म हो तथा दग्ध चन्द्रमा को मंगल देखता हो।[१३]

५. लग्न एवं सप्तम में जो नवमांश राशि हो, उनमें पापग्रह हो और उन पापग्रहों के अन्तराल में केन्द्रगत चन्द्रमा हो।[१४]

पक्षाघात के योग

पक्षाघात शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि किसी एक पक्ष अर्थात् अङ्ग में आघात अर्थात् नुकसान हुआ है। पक्षाघात को बोलचाल में लकवा कहते हैं। इस रोग में शरीर का एक भाग संज्ञाहीन शून्य, निश्चेष्ट तथा निष्क्रिय हो जाता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है–

१. शनि के साथ चन्द्रमा का ईसराफ योग हो।[१५]

२. शनि के साथ क्षीण चन्द्रमा का ईसराफ योग हो।[१६]

३. चन्द्रमा अस्तंगत हो।[१७]

४. षष्ठेश पापाक्रान्त हो, गुरु से दृष्ट न हो तथा षष्ठभाव में पापग्रह हो।[१८]

अन्य वातरोगों के भी योग शास्त्र में वर्णित हैं जिसमें होने वाले रोग प्रायः आमवात, शूल, सन्धिशूल एवं पक्षाघात के अलावा अनेक वातरोग माने गये हैं। किन्तु ये रोग आमवात आदि जैसे असाध्य नहीं होते। वायु प्रकोप से उत्पन्न रोग शरीर में आलस्य, अनिद्रा, हल्का-हल्का दर्द, कम्पन एवं अंगसुप्तता पैदा करते हैं इत्यादि।

पक्षाघात चिकित्सा

संसार में रोग-निदान की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र चिकित्सा, सिद्धयोग, एलोपैथिक, योगासन, एक्यूप्रेशर, यूराईन थैरेपी, होलीहीलिंग, ध्यानयोग, सूर्य ऊर्जा, जलचिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बकचिकित्सा आदि। यहाँ विशेष रूप से आयुर्वेदिक तथा मन्त्र चिकित्सा द्वारा पक्षाघात रोग को अथक प्रयास से अधिकतम ठीक किया जा सकता है।

चिकित्सक तथा औषधि में विश्वास

मन की एकाग्रता तथा विश्वास रोग के निदान में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यदि

आपके मन में ज्योतिषीय, चिकित्सक तथा औषधि में उत्तम भाव नहीं है तो कोई भी औषधि रोग को ठीक नहीं कर सकती। रोगी का आत्मविश्वास, भगवत्कृपा तथा औषधि का गुण-प्रभाव और चिकित्सक एवं परिजनों का सद्व्यवहार रोगी को शीघ्र स्वस्थ करने में चमत्कारी प्रभाव रखते हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

एक किलो शुद्ध सरसों का तेल, सौ ग्राम लहसुन की गरी (गुदा) पच्चीस ग्राम अजवाइन तथा दस लौंग को साफ कड़ाही में डालकर तब तक उबाले जब तक लहसून की गरी जलकर काली न पड़ जाये। इस तेल की रात्रि में जिस अंग पर पक्षाघात का प्रभाव है उस अंग के साथ-साथ उसके विपरीत अंग पर भी मालिश करें। नब्बे दिन तक मालिश करने से रोग का शमन हो जायेगा।

दूसरा प्रयोग यह भी है कि स्वस्थ (सींगवाली) गाय का गोबर एक किलो तथा दो सौ पचास ग्राम गोमूत्र तथा गोबर को ठीक से मिलाकर रोगग्रस्त अंग पर हर सुबह मालिस करें। औषधि देते समय या लेते समय एवं ग्रहण करते समय रोगी इस मन्त्र का उच्चारण करें–

औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः।

अर्थात् गंगाजल समस्त प्रकार के विषाक्त कीटाणुओं और प्रतिकूल वातादिक शमन करने में समर्थ है तथा भगवान् ही एकमात्र जगत् गुरु एवं वैद्य हैं। अतः उनका निरन्तर नाम स्मरण होना चाहिए।

मन्त्र-चिकित्सा

मन्त्र-चिकित्सा में महामृत्युञ्जय मन्त्र के विधिवत् अनुष्ठान करने से बड़े-बड़े अरिष्ट सहज ही दूर हो जाते हैं। भगवान् के नाम में अनन्त शक्ति सन्निहित हैं। यथा–

अच्युतानन्तगोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥[११]

अर्थात् भगवान् कृष्ण के 'ॐ अच्युताय नमः' 'ॐ अनन्ताय नमः' तथा 'ॐ गोविन्दाय नमः इस नामरूपी औषधि का उच्चारण (जप) करने से समस्त रोगों का नाश हो जाता है।

पक्षाघातरोगी को आयुर्वेदिक तथा मन्त्रचिकित्सा दोनों उपाय बतलाये गये हैं उन सबका यथाविधि नित्य प्रयोग करना चाहिए। प्राकृत संसार में ही भोग्यायतन शरीर की प्राप्ति होने पर भोगों के उपयुक्त सुख दुःखप्रद पदार्थ उपलब्ध होते हैं। अतः संसार में अवागमन तब तक नहीं मिट सकता, जब तक माया का सम्बन्ध है। भगवदंश जीव जब तक अपने शुद्ध स्वरूप भगवत् दासत्व में अवस्थित नहीं होता, तब तक माया इसे नहीं छोड़ती।

माया तभी छोड़ती है जब जीव मायापति भगवान् श्रीकृष्ण के शरणापन्न हो जाता है यथा

गीता

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।[२०]

भगवत् शरणापन्न होने पर फिर जीव को संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता, जन्म ही नहीं तो मरण भी नहीं–

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।[२१]

तथा गीता में ही कहा गया है–

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।[२२]

श्रीभगवान् के शरणापन्न होने पर दु:खों के कारणभूत क्षणभंगुर पुनर्जन्म को अर्थात् संसार को महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात् भगवत् लोक प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ से संसार में आना ही नहीं होता। अतः रोग की संभावना नहीं रहती।

संदर्भ :

१. श्रीमद्भगवद्गीता ४/३८
२. सु. सं. सू. १५/४०
३. शातातपस्मृति ३/२२ उ.धृ. आरोग्य अंक पृ. १४७
४. वीरसिंहावलोक आमवाताधिकार, पृ. १३८, उद्धत ज्यो. शा. में रो. वि. पृ. १०८
५. जातक तत्त्व षष्ठविवेक सू. २०३ तथा गदावली अ. ३, श्लो. १६
६. सारावली अ. २३, श्लो. २५
७. वही, अ. ४२ श्लो. १६
८. जातकपरिजात अ. ६२, श्लो. ८१-८२
९. वही
१०. गदावली अ. ३, श्लो. ३७-३८
११. वही
१२. वही
१३. वही
१४. वही
१५. गदावली अ. ३, श्लो. ४२-४३, उद्धृत ज्यो. में रो. वि. पृ. ११०
१६. गदावली अ. ३, श्लो. ४२-४३, उद्धृत ज्यो. में रो. वि. पृ. ११०
१७. वही
१८. वही
१९. आरोग्य अंक पृ. ७३८
२०. श्रीमद्भगवद्गीता ७/१४
२१. श्रीमद्भगवद्गीता ८/१६
२२. श्रीमद्भगवद्गीता ८/१५

कर्ण-रोग

डॉ. रत्नलाल शर्मा

भारतीय ज्योतिष शास्त्र संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों के आधार पर फलादेश करता है। क्योंकि इस धरा पर जब भी जातक का जन्म होता है तो वह अपने प्रारब्ध के अनुसार ही सुख-दु:ख, आधि-व्याधि, भय, रोग-शोकादि का भोग करता है। यहाँ तक कि किसी उच्च घराने में उत्पन्न जीव कभी कभी दो वक्त का भोजन पाने में असमर्थ हो जाता है और कभी किसी निर्धन परिवार में उत्पन्न जातक को राजा के समान धन-धान्य, वाहन, नौकर-चाकर, छत्र, चंवर आदि के द्वारा अलंकृत होते देखा गया है। अत: उपर्युक्त समस्त सांसारिक घटनाओं के पीछे व्यक्ति स्वयं के कर्मों का उपभोग करता है। ज्योतिष कर्मवाद के सिद्धान्त पर कार्य करता है। क्योंकि जातक जब किसी निर्धन परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार की दिशा और दशा दोनों ही दयनीय स्थिति में होती हैं ऐसे में दैवज्ञ लोग उसमें राजयोग की परिकल्पना कर बैठते हैं, यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि निर्धन परिवार में उत्पन्न जातक कभी-कभी राजा के सदृश भौतिक सुख-संसाधनों से सर्वसंपन्न होते हैं अत: स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हम लोग स्वयं के कर्मों के द्वारा ही रोग-शोक, आधि-व्याधि को प्राप्त करते हैं।

आज मानव आँधुनिक सुख संसाधनों से सर्व-सम्पन्न होता हुआ भी कष्टमय जीवन व्यापन कर रहा है। जिसका दूसरा सबसे बड़ा कारण है, मानव ने प्रकृति एवं अध्यात्म दोनों से मुँह मोड़ रखा है। प्रकृति के साथ खिलवाड़ करना आज मानव के लिए सबसे बड़ा अभिशाप के रूप में प्राप्त हुआ है। आज विज्ञान की वह वरदान वाली युक्ति सार्थक सिद्ध होती हुई उससे कहीं अधिक अभिशाप सिद्ध हो चुकी है। आज साध्य एवं असाध्य अत्यधिक रोगों की उत्पत्ति में भी विज्ञान का विशेष योगदान है।

जन्म जन्मान्तरों में किया हुआ पापकर्म का फल व्यक्ति रोग रूप में प्राप्त करता है। यह शास्त्र जातक के जीवन में सुख-दु:ख, रोग-शोक तथा राज भोगादि के विषय में सदा सर्वदा पूर्व में ही फल कथन करने में समर्थ है। जब की आज की आधुनिक चिकित्सा विज्ञान टैलिस्कॉप, एक्स-रे, सी.टी.स्केन इत्यादि आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित होने के उपरान्त भी पंगु दृष्टिगोचर होता है जबकी ज्योतिष शास्त्र इसके ठीक विपरीत रोग के आने से पूर्व ही अमुक समय में अमुक रोग से पीड़ित होगा, यह ज्ञान दशान्तर्दशा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय को लेकर

ज्योतिष का ही कथन नहीं, अपितु आयुर्वेद भी सहमत है, कि पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के फलस्वरूप रोग होता है। यथा–

जन्मजन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।[१]

आयुर्वेद का कथन है कि व्यक्ति अनियमित आहार विहार से रोगी होता है। जैसे कि कहा भी है–

मिथ्याहाराविहाराभ्यां रोगोत्पत्ति प्रजायते।[२]

यदि मनुष्य इन सभी के ऊपर नियन्त्रण रखे तो व्यक्ति कभी रोगी नहीं हो सकता तथा दीर्घ जीवी होगा। परन्तु ज्योतिष शास्त्र आहार विहार की अनियमितता रोग का ही कारण नहीं मानता, क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है, कि अनियमितता वाले लोगों को हृष्ट-पुष्ट एवं दीर्घ जीवी देखा गया है। यही कारण है, कि आयुर्वेद शास्त्र ने भी रोग उत्पत्ति के विषय में विचार करते समय अन्त में स्वीकार किया है, कि पूर्वार्जित पाप कर्मों के प्रभाववश रोग पैदा होते हैं। कभी-कभी दोषों के प्रकोप से अथवा कभी-कभी इन दोनों के कारण भी शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं। यथा–

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चाऽन्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजा काममनोविकारा:।।[३]

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता है, कि प्रत्येक बड़ा अथवा छोटा रोग जन्म जन्मान्तरों के पाप कर्मों के फलस्वरूप होता है तथा इसका निर्णय जन्मकालिक, प्रश्नकालिक एवं गोचरकालीन प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा ग्रन्थों में प्रतिपादित ग्रहों के योगों के आधार पर किया जाता है। सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर के अङ्ग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ग्रह अनिष्ट प्रभावकारी होता है तब वह अङ्ग धातु एवं रोग की सूचना देता है और जब वही ग्रह इष्ट स्थान पर स्थित होता है तो उसी अङ्ग धातु एवं दोषों को पुष्ट करता हुआ स्वस्थ करता है। ग्रह योग को ज्योतिषीय भाषा में योग कहते हैं। ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थिति को योग कहते हैं। ग्रह राशि एवं भाव के आधार पर बनने वाले योग स्थान भेद से सात प्रकार के कहलाते हैं।

१. स्थान से २. भाव से ३. ग्रहों से ४. स्थान भाव एवं ग्रहों से ५. स्थान एवं भाव से ६. भाव एवं ग्रहों से ७. स्थान एवं ग्रहों से सात प्रकार के योग बनते हैं।

आज हम बात कर रहे है कर्ण रोग की। यह रोग प्रधान रूप से दो प्रकार का होता है जन्मजात एवं आगन्तुक, जन्म से बहरा होना जन्मजात कर्ण रोग है। आगन्तुक रोगों में

१. जन्म के उपरान्त बहरा होना

२. कम सुनाई देना

३. कान में दर्द होना

४. कान में मवाद आना

सब आगन्तुक कर्ण रोग की श्रेणी में आते हैं। प्रायः सभी जातक ग्रन्थों में कर्ण रोगों का विचार किया गया है। कान का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह शनि होता है।

१. बुध एवं शुक्र कानों में सहायक ग्रह माने गये हैं।

२. जन्म कुण्डली में तृतीय भाव दायें कान एवं एकादश भाव बायें कान का प्रतिनिधित्व करता है।

३. पञ्चम एवं नवम भाव इसके सहायक भाव माने गये हैं।

४. आधुनिक दृष्टि से विचार करें तो जिस प्रकार से आजकल मन्द दृष्टि वाला व्यक्ति चश्मा लगाकर अपने कार्यों को सम्पादित कर लेता है, उसी प्रकार से कर्ण रोग से ग्रसित व्यक्ति (Hear Aid) सुनने की मशीन लगाकर सब बातें सुन लेता है। प्राचीन काल में इस प्रकार की व्यवस्था न होने पर इस विषय पर विचार नहीं किया गया, परन्तु हमारे महर्षियों ने उपचार या साधन द्वारा इस प्रकार के दोषों को दूर किये जाने का उल्लेख किया है। इसी के आधार पर कर्ण रोगों के साध्य एवं असाध्य होने का विचार करना चाहिए।

कर्ण रोग के लक्षण–

१. यदि कर्ण रोग कारक ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो वह रोग प्रायः चिकित्सा उपचार एवं आधुनिक यन्त्र मशीन आदि के प्रयोग से साध्य हो जाता है।

२. यदि जन्म कुण्डली में पापग्रह से युक्त चन्द्रमा एकादश या तृतीय अथवा प्रथम भाव में पाप ग्रह से दृष्ट हो तो निश्चित् रूप से कर्ण रोग होता है।

३. यदि जातक के जन्माङ्ग चक्र में पञ्चम या नवम भाव पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जातकों को कानों में अत्यधिक कष्ट रहता है।

४. यदि नवम भाव पापग्रहों से दृष्ट हो तो दाहिना कान यदि पञ्चम भाव दृष्ट हो तो वाम कान में रोग होता है। यथा–

एकादशे तृतीये होरायां पापसंयुते शशिनि।
कर्ण विकलो नरः स्यात् पापग्रहावीक्षिते सद्यः॥
नवमे पञ्चमे राशौ पापग्रहौ वीक्षितौ ग्रहौ स्याताम्।
श्रोतोपघातमतुलं कुर्यातां जातमात्रस्य।
नवमे दक्षिणकर्ण वामं दै पञ्चमे ग्रहो हन्यात्।
अत्रैव सौम्यभे वा शुभदृष्टे वा शुभं वाच्यम्॥

कर्ण रोग के विषय में और अधिक सूक्ष्मता से ज्ञान प्राप्त करने के लिए जन्म लग्न के

अतिरिक्त जो व्यक्ति जिस राशि के चन्द्रमा में रोग से ग्रसित होता है। उसे उसी समय उसी राशि को लग्न मानकर रोग के विषय में विचार करना चाहिए और जन्मकालिक चन्द्रमा से भी विचार करना चाहिए। यथा–

राशौ होरान्तरं प्राणय यो यस्मिन् व्याधिमाप्नुयात्।
तस्यास्य होराप्रसवे चन्द्रस्थानं च यद्भवेत्॥
सव्यापसव्यभागे योगमथैव ग्रहास्तु संप्राप्ताः।
कुर्युर्नृणां च चिह्नं व्यङ्गभयं पापविक्षिताः सौम्याः॥

उपचार–

यदि एकादश या तृतीय भावस्थ चन्द्रमा पर अथवा पंचम व नवम भाव पर सूर्य की दृष्टि हो तो निम्न मंत्रों का अनुष्ठान करना चाहिए।

१. सूर्य के जपनीय मन्त्र–

१. ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

२. सूर्य-बीजमंत्र-ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।

३. सूर्य के तांत्रिक मन्त्र-

१. ॐ घृणिः सूर्यादित्योम्।
२. ॐ घृणिः सूर्यः आदित्य श्रीः।
३. ॐह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।
४. ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः।

नाम मन्त्र-

१. ॐ घृणिः सूर्याय नमः।

पौराणिक मन्त्र–

ॐ जपाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

जप संख्या-७०००,

यदि एकादश या तृतीय भावस्थ चन्द्रमा पर अथवा पंचम व नवम भाव पर मंगल की दृष्टि हो तो निम्न मंत्रों का अनुष्ठान करना चाहिए।

२. भौम के जपनीय मन्त्र-

ॐ अग्निमूर्धा दिवः ककुत्पति पृथिव्या अयम्। अपाँ रेताँ सि जिन्वति।

भौम-बीजमंत्र– ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः।

भौम के तांत्रिक मंत्र-

१. ॐ हां हंसः खं खः।

२. ॐ हूं श्रीं मंगलाय नमः।

नाम मंत्र-

ॐ अं अङ्गारकाय नमः।

पौराणिक मंत्र-

ॐ धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्।।

जप संख्या-१०,०००

यदि एकादश या तृतीय भावस्थ चन्द्रमा पर अथवा पंचम व नवम भाव पर शनि की दृष्टि हो तो निम्न मंत्रों का अनुष्ठान करना चाहिए।

शनि के जपनीय मंत्र–

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।

शनैश्चर का बीज मंत्र – ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः।

तांत्रिक मंत्र–

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः।

२. ॐ क्लीं क्लीं शनये नमः।

नाम मंत्र– ॐ शं शनैश्चराय नमः।

पौराणिक मंत्र–

ॐ नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्त्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्।।

जप संख्या– २३,०००

यदि एकादश या तृतीय भावस्थ चन्द्रमा पर अथवा पंचम व नवम भाव पर राहु की दृष्टि हो तो निम्न मंत्रों का अनुष्ठान करना चाहिए।

राहु के जपनीय मंत्र–

ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया श्चिष्ठया वृता।

राहु का बीज मंत्र– ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

तांत्रिक मन्त्र–

१. ॐ ह्रीं राहवे नमः।

२. ॐ ह्रीं ह्रीं राहवे नमः।

नाम मंत्र– ॐ रां राहवे नमः।

पौराणिक मंत्र–

ॐ अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविर्मदनम्।
सिंहकार्गर्भसंभूतं तं राहुं प्रणामाम्यहम्।।

जप संख्या–१८,०००

यदि एकादश या तृतीय भावस्थ चन्द्रमा पर अथवा पंचम व नवम भाव पर केतु की दृष्टि हो तो निम्न मंत्रों का अनुष्ठान करना चाहिए।

केतु के जपनीय मंत्र–

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे. शमुषद्भिरजायथाः।।

केतु का बीज मंत्र– ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः।

तांत्रिक मंत्र–

१. ॐ ह्रीं केतवे नमः।

२. ॐ क्रीं क्रीं केतवे नमः।

नाम मंत्र– ॐ कें केतवे नमः।

पौराणिक मंत्र–

ॐ पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणामाम्यहम्।।

जप संख्या–१७,०००

एक्युप्रेशर विधि द्वारा भी समस्त रोगों का उपचार संभव है। हमारे हाथ एवं पैरों में हृदय, गुर्दा, नाक-कान-गला-नेत्र-पेट-मूत्राशय इत्यादि समस्त अवयवों के केन्द्र होते हैं। एक्युप्रेशर विधि के द्वारा समस्त केन्द्रों को दो से तीन मिनट तक दिन में कम से कम तीन बार रोग से सम्बन्धित केन्द्र पर दबाव (एक्युप्रेशर) विधि के द्वारा रोगों का निदान संभव है। जिसको यहाँ पर चित्र के द्वारा प्रदर्शित किया है।

उन्माद

(उन्माद एवं मानसिक रोग कारण एवं निवारण)

डॉ. राजेश शर्मा

भूमिका (Introduction)

पुरा काल से ही भारत कई महत्त्वपूर्ण व अलौकिक विद्याओं का आविष्कर्ता व संस्कर्ता रहा है। वैदिक काल से ही मानव नूतनता के अन्वेषण हेतु लालायित व हर्षित रहता है। वेद काल में ऋग्ज्योतिष, याजुष्ज्योति के माध्यम से ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का अभिज्ञान होता था। कालान्तर में वेदाङ्गज्योतिष का प्रचलन बहुचर्चित है। ज्योतिष के प्रमुख तीनों स्कन्धों में पृथक-पृथक विषयों ग्रह-गति-स्थित्यादि समष्टिगत फलविचार एवं व्यष्टिगतफल विचार का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हमें समुपलब्ध होता है। होरा स्कन्ध के अन्तर्भूत ही रोगविचार वर्णित है। ज्योतिष शास्त्र पुनर्जन्मवाद पर बल देता है। पुनर्जन्मवाद की पुष्टि अधोलिखित पद्य से दृष्टिगोचर होती है–

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पंक्ति समभिव्यनक्ति॥[1]

ज्योतिष शास्त्र के फलकथन करते समय हमें त्रिविधकर्म (1. प्रारब्ध, 2. संचित, 3. क्रियमाण) मद्देनजर रखना होता है। ज्योतिष की इसी प्रधानता व परिनिष्ठता का परिशीलन करने पर ही शास्त्र को मूर्ध्नि रूप में संस्थिति को सिद्ध किया है, इस सम्बन्ध में कहा गया है–

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि संस्थितम्॥[2]

ज्योतिष में जब प्रश्न रोग विचार का हो, तो प्रथमतः यह जानने की आवश्यकता होती है, रोग होने के कारण क्या हैं तथ्य क्या है? लक्षण क्या है? विशेषताएँ क्या हैं? उनके सुयोग व कुयोग क्या-क्या है? तथा ये घटित होते हैं? इन्हीं प्रश्नों का समाधान ज्योतिष के विज्ञानरूपी ज्ञान के परिज्ञान से ही संभव है हमारे ऋषियों ने रोग सन्दर्भ में कहा है कि–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते॥[3]

शातातपीय तन्त्र में तथा वीर-सिंहावलोक में त्रिशठाचार्य ने पूर्वजन्म कृत पापों की रोगोत्पत्ति

---

1. वृहज्जातक, पृ.सं. श्लो.सं.
2. ज्योतिषशास्त्रेतिहासः, पृ.सं. 9
3. प्रश्नमार्ग–अद्य श्लो. 3

का कारण स्वीकार किया है, यथा–

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः॥
कुष्ठज्य राजयक्ष्मा च प्रमेहो गहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मसिकासा अतिसाभगन्दसै॥ शा.त.
जठर गुद्जोन्मादापस्मृत्यसृगुत्सृतिपंगुता।
श्रुति विकलता नाग्दैकल्मप्रमेय भगन्दराः।
प्रदरपवन व्याधिश्वित्रशयसक्षणक्षन्धता तिमिरवदन
घ्रणार्शासिश्वयथुविपची व्रणाः॥

उपरोक्त सभी रोगों में मानसिक रोग का अपना विशेष महत्त्व है। मानसिक रोग मन एवं मस्तिष्क में विकार के कारण उत्पन्न होते हैं। उन्माद, सनक, अपस्मार, जड़ता एवं मतिभ्रम आदि मानसिक रोग किन व्यक्तियों को हो सकते हैं। इसका ज्ञान कुण्डली में विद्यमान योगों द्वारा हो सकता है। यह ज्ञान कुण्डली में किन आधारों पर किया जाता है? इसका विवरण अग्रप्रस्तुत है।

मानसिक रोग लक्षण व प्रकार

–वह जो अर्थहीन वार्तालाप एवं व्यवहार रत हों, जो समाज विरोधी हो।

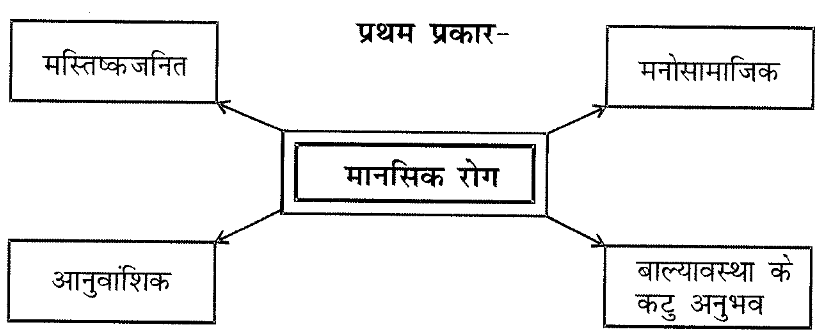
–जिसे अकारण चिन्ता, घबराहट, परेशानी, अनजाना भय रहता हो।

–वह जिसे आङ्गिक शिथिलता होती हो, सम्पूर्ण शरीर में झटके या बेहोशी जैसी रहती हो।

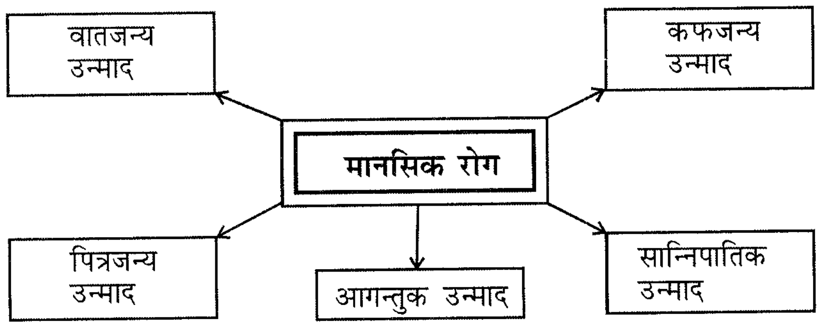
–जिसकी स्मृति कमजोर हो, जो परिचित व्यक्तियों या स्थानों को भी नहीं पहचान पाता हो, अपने शरीर का ध्यान नहीं रख पाता हो।

–वे जो समय की दृष्टि से कमजोर हैं या जिनका विकास उनकी आयु के अन्य व्यक्तियों जैसा नहीं है या जन्म से ही जिनका विकास धीमा है।

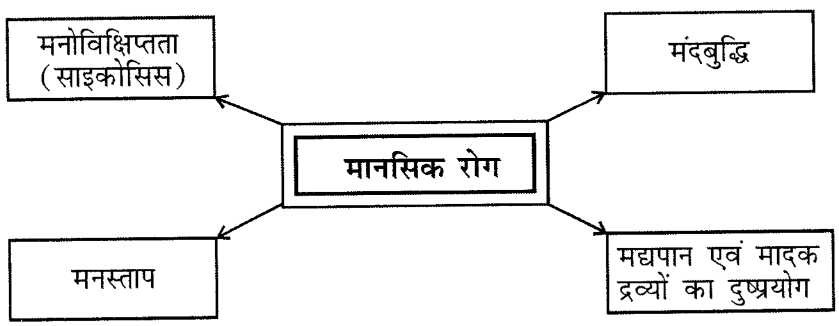
मानसिक रोगों के प्रकार–



द्वितीय प्रकार-



तृतीय प्रकार-



1. मनोविक्षिप्तता–ये गम्भीर किस्म के मानसिक रोग हैं तथा मुख्य तौर पर चार तरह के हो सकते हैं–

1. कम अवधि की या तीव्र मनोविक्षिप्तता।

पुनः पुनः होने वाली मनोविक्षिप्तता जैसे द्विध्रुवीय असंतुलन (Bipolar Disorder)

–दीर्घकालीन मनोविक्षिप्तता जैसे विखण्डित मानसिकता जिसे साधारण भाषा में पागलपन या उन्माद कहते हैं।

–आंगिक मनोविक्षिप्तता जो कि शारीरिक रोगों या मस्तिष्क की क्षति के कारण होती है।

2. मानस्ताप–ये साधारण तीव्रता के मानसिक रोग है। ऐसे रोग अक्सर दबावपूर्ण परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक या दीर्घकालीन प्रतिक्रियाओं के कारण होते हैं।

3. मंदबुद्धि–ऐसे व्यक्तियों का मानसिक विकास जन्म से ही धीमा होता है और उनमें बुद्धि की कमी के साथ-साथ सामाजिक समायोजन की क्षमता सीमित होती है।

4. मद्यपान एवं मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग–शराब, दवाईयों एवं अन्य नशीले पदार्थों के सेवन से व्यक्ति उन पर निर्भर हो जाता है और उसे नशे की आदत पड़ जाती है जिससे उसमें नशा करने की तीव्र इच्छा होती है और यदि वह नशे के सेवन की मात्रा कम करे या उसे बन्द कर दे तो उसमें कुछ विशिष्ट लक्षण देखे जाते हैं जिन्हें प्रतिगमनात्मक लक्षण या विदड्रावक सिस्टम्स कहते हैं।

ज्योतिषीय योगाधारित रोग कारण

रोग कारक योगों के निर्माण में प्रमुख रूप से मेषादि राशियों लग्नादिद्वादशभाव एवं सूर्यादि नवग्रहों की विशेष भूमिका होती है। मानसिक रोगों का सम्बन्ध मन मस्तिष्क, चित्तादि से विशेष रूप से होता है। अतः इस दृष्टि से योगकारक तत्त्वों का सामान्य परिचय भी आवश्यक है:–

कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्कोडवासोभृतो।[4]

मेष राशि से सिरदर्द, उन्माद एवं मानसिक रोग की संभावना के कारण मिथुनराशि से चित्तभ्रम, अस्थिरता एवं मानसिक अशान्ति एवं कर्क राशि से हृदय दौर्बल्य, हृत्कम्प, हृदयाघात के साथ-साथ मन पर होने वाले दुष्प्रभाव का विचार करना चाहिए।

भावों में पञ्चम भाव से बुद्धि का तथा षष्ठ भाव से रोग विचार होता है।

कतिपय ज्योतिषीय योगः–

(1) राहु तथा अन्य पापग्रहों (शनि, मंगल, सूर्य) से युक्त चन्द्रमा कुण्डली में त्रिक् भावों में स्थित हो, तो जातक उन्मादी (पागल) एवं कलहप्रिय होता है, यथा

चन्द्रे सपापे फणिनाथयुक्ते रिश्फे सुते रन्ध्रगतेऽथवापि
उन्मादभाक्तत्र सरोषयुक्तो जातस्तु नित्यं कलहप्रियः स्यात्।।[5]

(2) षष्ठेश चन्द्रमा चतुर्थ भाव में एवं चतुर्थेश षष्ठभाव में हो तो उच्चराशिस्थ चन्द्रमा होते हुए भी कर्क राशि छठें भाव में उन्माद कारक ही होते हैं।

(3) लग्नेश (चन्द्र) क्रूर ग्रहों के साथ 6, 8, 12, भावों में स्थित हो तो भी उन्माद हो सकता है।

सक्रूरो देहपो देहसौख्य हाऽन्त्यारिरन्ध्रगः।।[6]

(4) केन्द्र में नीचराशि का चन्द्रमा स्थित हो, बुध की उस पर दृष्टि हो तो भी उन्माद योग होता है।

(5) चन्द्र गुरु शनि एवं राहु का योग अष्टम भाव में हो।

---

4. वृहज्जातक, अ. 9, श्लो.सं. ....
5. जातकपारिजात अ. 6, श्लोक-83
6. जातक पारिजात अ. 11, श्लोक- 33

पक्षाघात के योग

(1) रोगस्थान (षष्ठ भाव) में शनि राहु या केतु पाप ग्रहों से दृष्ट युत हो।

(2) वृश्चिक राशि में बलहीन (नीचस्थ) सूर्य, शनि, राहु या केतु के साथ हो।

(3) लग्नस्थ चन्द्र पर शनि, बुध की दृष्टि हो।

अपस्मार योग

(1) षष्ठ स्थान में चन्द्र लग्नस्थ राहु हो।

(2) मंगल के साथ शनि छठे आठवें स्थान में हो।

(3) अष्टम स्थान में चन्द्र एवं राहु हो।

जड़ता

(1) राहु के साथ तृतीयेश अनिष्ट स्थान में हो।

(2) लग्नस्थ चन्द्र एवं शनि को मंगल सप्तम दृष्टि से देख रहा हो।

(3) लग्नेश व चन्द्र मंगल से पीड़ित हो।

(4) लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा का महायोग हो।

कुण्डलियों द्वारा मानसिक रोगपरक योगों का विश्लेषण

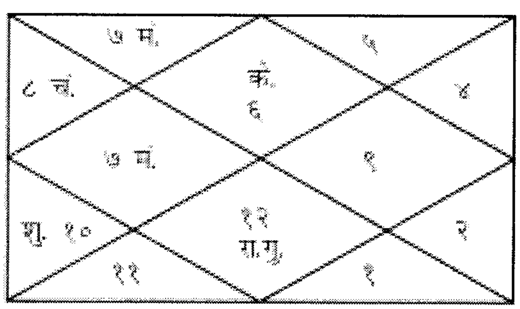
कुण्डली नं. 1

जन्म तारीख – 20 दिसम्बर 1987

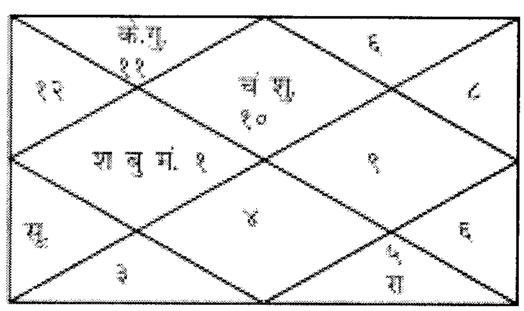
जन्म समय – मध्य रात्रि 12:00 बजे

जन्म स्थान – बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

जन्मकुण्डली



नवांशकुण्डली



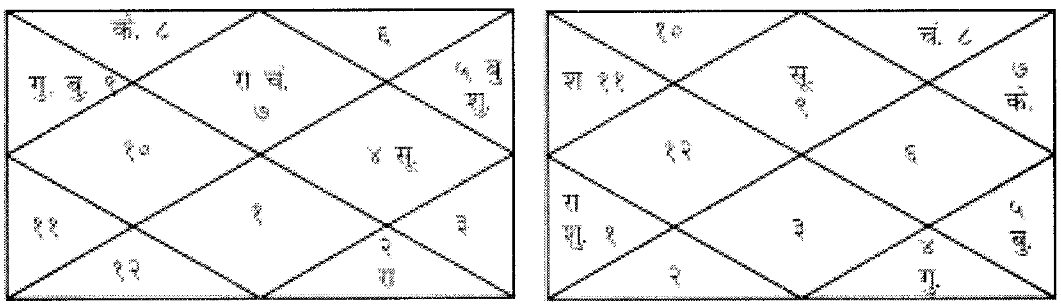
कुण्डली का विश्लेषण (Analysis of Horosope)

कुण्डली में लग्न से द्वितीय स्थान में मंगल, नवांश कुण्डली में शनि अपने नवांश में चतुर्थ भाव में होने से यह जातक उन्मत्त पाया गया है। इसकी पुष्टि निम्न श्लोक से हो रही है–

धनाश्रिते भूतनये सुखस्थे
सौरे व्ययस्थेऽरिनवांशसंस्थे।
उन्मत्तरूपोऽत्र भवेन्मनुष्यः
सर्वत्र निन्थः कृतविस्मृतयश्च॥[7]

कुं. जन्म तारीख	-	3-8-1984
जन्म समय	-	11:55 A.M.
रोगी का नाम	-	मानसी लुथरा

जन्मकुण्डली **नवांश कुण्डली**



कुण्डली में अष्टमेश एकादश में स्थित होने से जातिका बुद्धिहीन है। जिसकी पुष्टि निम्न पद्य द्वारा होती है–

अष्टमेशे सुते लाभे तस्य बुद्धिर्न जायते।
द्रव्यं न स्थीयते गेहे जड़बुद्धिर्भवेज्जनः॥[7]

मानसिक रोगों का उपचार- (Remedies of Mental Diseases)

पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर हम यह ज्ञान कर सकते हैं कि कुण्डली में क्या योग बन रहा है? योग का फल क्या है? तत्तद ग्रह की दशा के समय रोग के होने संभावना होती है। अब प्रश्न यह समुपस्थित होता है कि यदि रोग है तो रोग का उपचार किस विधि से होगा। रोग शान्ति के उपाय ज्योतिष शास्त्र में रोग कारक ग्रहों के अशुभ प्रभाव को दूर करने अथवा कष्टानुभूति को न्यूनतम करने हेतु पाँच प्रकार के उपाय बतलाये गए हैं।

(1) मन्त्र (2) मणि (3) औषधि (4) दान (5) स्नान।

(1) **मन्त्र**–'मननात् त्रायते यस्मातस्मान्मन्त्रः' कथ्यतेति। मन्त्र द्वारा विविध रोगों का उपचार यदि शास्त्रोक्त विधि से किया जाए तो सभी प्रकार के रोगों से निजात मिलती है। जैसा वेदों में कहा गया है–"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" अर्थात् सूर्य आत्मा है तथा "चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत" आदि। जातक को जिस ग्रह के कारण पीड़ा हो रही हो, शान्ति हेतु उपाय मन्त्रों द्वारा होता है।

7. वृद्ध यवन जातकम्, भाग-1 24/68

(2) मणि– रत्नों के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र में उपायों की चर्चा कतिपय ज्योषित शास्त्रीय तथ्यों में विशद रूप से वर्णन है। ग्रहों की निर्बलता व दुष्प्रभाव को दूर करने हेतु उपायों का ब्यौरा दिया गया है, यह दूसरा प्रकार है, ग्रहों के दुष्कारणों के निवारण का।

(3) औषधि– आयुर्वेद व ज्योतिष शास्त्र की सहभागिता द्वारा मानव जगत् को बहुत अधिक लाभ होता है, क्योंकि ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से हमें मालूम होता है कि अशुभ योगों का विचार कर आयुर्वेद द्वारा औषधियों के माध्यम से उपचार किया जाता है।

(4) दान– ज्योतिष में विभिन्न ग्रहों की शान्ति हेतु पृथक-पृथक द्रव्यों की दान व्यवस्था से ग्रहों का उपचार किया जाता है।

(5) स्नान– इस शास्त्र में औषधियों के स्नान द्वारा भी ग्रहों का उपचार किया जाता है।

सारांश– ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न विषयों का साङ्गोपाङ्ग विचार विभिन्न भावों व ग्रहों के माध्यम से होता है। इस शोध पत्र में मानसिक एवं उन्माद रोगों का विचार किया गया है। चन्द्र, षष्ठेश व पञ्चमभाव आदि के माध्यम से शास्त्रोक्त विधि से मानसिक रोगों का कुण्डली द्वारा विचार किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार के उपायों द्वारा उपचार किया जा सकता है।

मानसिक रोग शारीरिक रोगों की तरह ही होते हैं जो व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में जैव रसायन परिवर्तन आनुवांशिक कारक, मनो सामाजिक कारक या बाल्य काल के कटु अनुभवों से होते हैं, मानसिक रोगों के उपचार हेतु विभिन्न औषधियाँ, मनोपचार, विद्युत आक्षेपी उपचार एवं सामाजिक पुनर्स्थापन पद्धतियाँ उपलब्ध हैं।

सुझाव– मानसिक रोगी हम सब की तरह ईश्वर की सन्तान हैं उनमें से कोई हमारा परिचित मित्र या सम्बन्धी भी हो सकता है। ऐसे रोगियों से भयभीत होना, भेदभाव या घृणा करना उनका तिरस्कार करना, मजाक उड़ाना, तंग करना, शारीरिक, मानसिक या यौन उत्पीड़न करना न केवल कानूनी अपराध है बल्कि मानवाधिकारों का उल्लंघन भी है।

(2) मानसिक रोगी का चिकित्सीय उपचार के साथ-साथ ज्योतिषीय कारणों का भी विश्लेषण करना चाहिए।

(3) कुण्डलियों का विश्लेषण शास्त्रोक्त होने से ही मानसिक रोगी के कारणों का निवारण किया जा सकता है। क्योंकि कष्ट तीन प्रकार के होते हैं जैसे कहा भी है–

दु:खत्रयाभिघार्ताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेनैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥1॥
दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीत, श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥2॥[8]

8. सांख्यकारिका- का.सं.- 9/2

ज्योतिष शास्त्र में मानसिकरोग विचार

डॉ. विनोद कुमार शर्मा

वैश्विक स्तर पर चहुँमुखी विकास के लिए विशेषतया भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वस्थ और एवं दीर्घायु होना आवश्यक बताया गया है । यथा-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयशो जीवितस्य च।।[1]
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित्।[2]

अतः इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति हेतु वैदिक ऋषियों ने अपने तपो बल और अपनी साधना से संसार के सभी सामाजिक प्राणियों के सर्वविध कल्याण हेतु सभी विषयों पर जनहित में प्रार्थनारूपी मन्त्रों को उपदेशित किया है। यथा-

पश्येम शरदश्शतं जीवेम शरदश्शतं श्रृणुयाम शरदश्शतम्।
प्रब्रवाम शरदश्शतमदीनाः स्याम शरदश्शतं भूयश्च शरदश्शतात्।[3]

शारीरिक आरोग्यता के महत्त्व के सम्बन्ध में विविध अभिमत उपलब्ध होते हैं-

कविकुलगुरु कालिदास का अभिमत के अनुसार शरीर ही समस्त धर्मों की साधना का सर्वप्रथम साधन है। यथा- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**[4]

गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित आरोग्यांक के अनुसार -

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।[5]

अन्य मत - **सर्वमेव परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्। शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनश्यति।**[6]

भारतीय दर्शनशास्त्र संसार की दुःखमयता का विशेष रूप से प्रतिपादन कर दुःखत्रयाभिघात से मुक्ति के मार्ग का भी प्रतिपादन करता है। महर्षि ईश्वरकृष्ण ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा

है-

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्ताऽत्यन्ततोऽभावात्॥[7]

आयुर्वेद शास्त्र के ऋषि चरक के अनुसार रोग **नैसर्गिक, आगन्तुक** और **मानस** भेद से तीन प्रकार के होते हैं। निजरोग वात-पित्त-कफ अर्थात् दोषों के विकृत होने से, आगन्तुकरोग देवता, असुर, भूत-प्रेत, गन्धर्व और जीवाणुओं के आक्रमण, विष युक्त वायु के स्पर्श, अग्नि से जल जाने से, शस्त्र आदि के अभिघात से तथा मानसिक रोग रज और तम दोषों के उद्रेक से या मनोऽनुकूल वस्तु की अप्राप्ति तथा अप्रिय वस्तुओ की प्राप्ति होने से उत्पन्न होते हैं। यथा-

त्रयो रोगा इति-निजागन्तुमानसाः। तत्र निजः शरीरदोषसमुत्थः,
आगन्तुर्भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसमुत्थः, मानसः
पुनरिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते। [8]

सुश्रुताचार्य के अनुसार उक्त तीनों के अतिरिक्त चौथे प्रकार का रोग स्वाभाविक संज्ञक है, जिसमें भूख-प्यास, निद्रा, जरावस्था या मृत्यु आदि सम्मिलित हैं। यथा-

ते चतुर्विधाः आगन्तवः, शारीराः, मानसाः स्वाभाविकाश्चेति।[9]

महाभारत के अनुसार शरीर में रोगों का प्रकोप अनिष्ट प्राप्ति, अवाञ्छित संक्रमण, अत्यधिक कठिन परिश्रम एवं प्रकृति के विरुद्ध आचरण इन चार कारणों से होता है। यथा -

व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जनात्।

दुःखं चतुर्भिः शारीरं कारणैः सम्प्रवर्तते॥[10]

उपरोक्त सभी प्रकार के रोग दोषज, कर्मज या दोषकर्मज होते हैं। दोषज रोग वर्तमान जन्म के अपचार (अपथ्य सेवन) से, कर्मज रोग पूर्वजन्म में किये हुए पापकर्मों से तथा दोषकर्मज रोग पूर्वजन्म में किये हुए अशुभ कर्म तथा इस जन्म किये हुए अपथ्य सेवन से उत्पन्न होते हैं, इन सब दोषों से शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते है। यथा-

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।

तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः।[11]

दृष्टापचारजः कश्चित् कश्चित् पूर्वापराधजः।

तत्सङ्कराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः॥[12]

अन्य- कर्मजाः व्याध्यः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे।[13]

अन्य- जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।[14]

धर्मशास्त्र के अनुसार जन्मजन्मान्तर में किए गये पाप कर्मो का फल व्याधि के रूप में प्राप्त होता है। यथा-

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।

बाधते व्याधिरूपेण ....।।[15]

आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार जिस प्रकार किसी वृक्ष की वृद्धि और क्षीणता उस वृक्ष के मूल (जड़) की अविकृत और विकृत अवस्थाओं पर निर्भर होती है, उसी प्रकार शरीर की वृद्धि और क्षीणता वातादि त्रिदोष, रसादि सप्तधातु और मूत्रादि मल इनकी अविकृत और विकृत आवस्थाओं पर निर्भर होती है। यथा-

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्।[16]

आयुर्वेद के अनुसार ब्रह्माण्ड को जिस प्रकार चन्द्र, सूर्य एवं वायु ने त्याग, आकर्षण तथा परिभ्रमण की अपनी विशिष्ट प्रक्रियाओं से जीवन्त रखा हुआ है उसी प्रकार वात, पित्त और कफ ने शरीर को धारण किया हुआ है। यथा -

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा।।[17]

अन्य-

त्रयोदोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च।

देहं संधारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितैः।।[18]

आयुर्वेदाचार्यो के अनुसार आयुर्वेदशास्त्र पञ्चमहाभूतों की आधार शिला पर आधारित है और समस्त द्रव्यों को पञ्चभौतिक मानता है - **भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते।**[19]

अतः तीनों दोष भी द्रव्य होने के कारण पञ्चभौतिक हैं - **सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिक-मस्मिन्नेवार्थे।**[20]

पञ्चमहाभूतों से तीनो दोषें की उत्पत्ति पञ्चमहाभूतों के गुणों के आधार पर होती है।

1. आकाश और वायु महाभूत से वात दोष की उत्पत्ति होती है।
2. अग्नि (तेज) तथा जल महाभूत से पित्त दोष की उत्पत्ति होती है।
3. पृथ्वी एवं जल महाभूत से कफ दोष की उत्पत्ति होती है।

आकाशमारुताभ्यां वातः। वह्निजलाभ्यां पित्तम्। जलपृथिवीभ्यां श्लेष्मा।।[21]

वायु दोष की भाँति शरीर में वात दोष है, पित्त आग्नेय है और कफ सोम(जल) गुणात्मक है-

तत्र, वायोरात्मैवात्मा पित्तमाग्नेयं श्लेष्मा सौम्य इति।[22]

आयुर्वेदाचार्यों ने त्रिदोष और त्रिगुण का भी परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित किया है। उनके अनुसार सत्त्व, रज और तम तीनों गुण मानस भावों को उत्पन्न करते हैं। सत्त्व में विकृति न होने से यह सदैव गुणस्वरूप रहता है। यथा-

सत्त्वं प्रकाशकं विद्धि रजश्चापि प्रवर्तकम्।

तमो नियामकं प्रोक्तमन्योन्यमिथुनात्मकम्।[23]

रज और तम में विकृति होने से ये दोनों मानस दोष कहलाते हैं। यथा-

मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च।[24]

रज और तम जब विकृत होते हैं, तब मन को दूषित कर मानस व्याधियों को उत्पन्न करते हैं। मानस विकारों का शरीर पर और शारीरिक विकारों का मन पर प्रभाव अवश्यम्भावी है, अतः मन और शरीर एक दूसरे के साथ अनुस्यूत हैं। अतः कहा गया है कि 'ते च विकाराः परस्परमनुवर्तमानाः कदाचिदनुबन्धनन्ति कामादयोज्वरादयश्च।'[25] इस सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए स्वामीविवेकानन्द जी का कथन - **''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है।''**

रज और तम में जो गुण पाए जाते हैं वे गुण ही तीनों दोषों में उपलब्ध होते हैं। त्रिदोष का पाञ्चभौतिक संगठन होता हैं और पञ्चमहाभूत त्रिगुणात्मक होते हैं। जैसे -आकाश सत्त्वगुण प्रधान है, वायु रजोगुण प्रधान है, अग्नि सत्त्व तथा रजोगुण प्रधान है, जल सत्त्व और तमोगुण प्रध ान है तथा पृथ्वी तमोगुण प्रधान भूत है।

तत्र सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम।[26] **सत्त्वबहुलमाकाशं, रजोबहुलो वायुः, सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः, सत्त्वतमोबहुला आपः, तमोबहुला पृथिवीति।**[27]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर त्रिदोष और पञ्चमहाभूत तथा सत्त्व ,रज, तम के परस्पर सम्बन्ध के ज्ञात हो जाने से ये स्पष्ट हो जाता है कि तीनों गुण त्रिदोष को प्रभावित करते है एवं मानस विकार शारीर विकारों के साथ परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। शरीर और मन के ये दोष परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होते हैं। अतः कहा भी गया है -

शरीराज्जायते व्यधिर्मानसो नैव संशयः।

मानसाज्जायते व्याधिशारीरो नैव संशयः।।[28]

अन्य -

शरीरमपि सत्त्वमनुविधीयते, सत्त्वं च शरीरम्।[29]

महर्षि चरक के अनुसार रज और तम के अगणित विकारों से काम-क्रोध -लोभ-मोह-ईर्ष्या-मान-मद-शोक-चिन्ता-उद्वेग-भय-हर्ष-विषाद-दैन्य(दिमागी कमजोरी) मात्सर्य आदि प्रमुख हैं। यथा-

रजस्तमश्च मानसौ दोषौ, तयोर्विकाराः कामक्रोध
लोभमोहेर्ष्यामानमदशोकचित्तोद्वेगभयहर्षादयः।[30]

मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय
इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति।[31]

महर्षि चरक के अनुसार ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, अहंकार तथा द्वेष आदि से जो विविध मानसिक विकार(रोग) उत्पन्न होते हैं, उन सभी का कारण प्रज्ञापराध है। धी (बुद्धि) धृति तथा स्मृति से भ्रष्ट पुरुष जो अशुभ कर्म करता है, उन्हें प्रज्ञापराध जानना चाहिए। यह प्रज्ञापराध सभी दोषों को प्रकुपित करते हैं अर्थात् इन प्रज्ञापराधों से शरीर तथा मानस के सम्पूर्ण दोष कुपित होते हैं।[32]

ईर्ष्याशोकभयक्रोधामानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः।।[33]

अतः कहा गया है- **प्रज्ञापराधो हि मूलं रोगाणामम्।**

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार रजो गुण से उद्भूत काम, क्रोध ही पाप (रोग) के कारण हैं। यथा-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशना महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।[34]

मनोविज्ञान के अनुसार चिन्ता एवं मनोवेग से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः कहा गया है-

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा।[35],
चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्।[36]

चिन्ता व्याधिप्रकाशाय नरकाय प्रकल्पयेत्।
तस्माच्चिन्तां परित्यत्य चानुवर्तस्व शोभने।[37]

शास्त्रों में चिन्ता को चिता से भी अधिक भयंकर माना गया है। यथा–

चिन्तायाश्च चितायाश्च बिन्दुमात्रं विशेषतः।

चिता दहति निर्जीवं चिन्ता जीवन्तमप्यहो।।[38]

महर्षि चरक के कथनानुसार इष्ट वस्तु की अप्राप्ति और अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति से रज और तम में वैषम्य होकर मानस व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। यथा–

मानसः पुनरिष्टस्यालभाल्लभाच्चानिष्टस्योपजायते।[39]

महर्षि चरक के अन्य मत के अनुसार बुद्धि, धैर्य और स्मरण शक्ति के नष्ट हो जाने से मनुष्य शारीररिक तथा मानसिक दोषों को प्रकुपित करने वाले जिन अशुभ कर्मों को करता है, उन्हें प्रज्ञापराध कहते हैं–

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टःकर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।

प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम्।।[40]

धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः सम्प्राप्तिः काल कर्मणाम्।

असात्म्यार्थागमश्चेति ज्ञातव्या दुःख हेतवः।।[41]

प्रज्ञापराध से कर्मज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। यथा–

प्रज्ञापराधात्सम्प्राप्ते व्याधौ कर्मज आत्मनः। [42]

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने बुद्धि विभ्रम के कारणों को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि विषय–भोगों को भोगना तो दूर रहा, उनका चिन्तन करने मात्र से साधक पतन की ओर चला जाता है। इन्द्रिय विषय का चिन्तन करने से मनुष्य उन विषयों की ओर आसक्त हो जाता है। आसक्ति से कामनाएँ पैदा होती है, कानाओं की पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध होने पर सम्मोह(मूढ़ भाव) उत्पन्न होता है, सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट होती है। स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने से मनुष्य पथभ्रष्ट होकर पतनोन्मुख हो जाता है। यथा–

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[43]

श्रीशारंगधराचार्य के अनुसार दश इन्द्रियाँ, (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ) पञ्चमहाभूत और मन ये सोलह विकार कहे गये हैं। ये समस्त संसार में व्याप्त हैं अतः इनके

विना विश्व में कुछ भी नहीं उत्पन्न होता है। यथा-

दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च।

विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः।।[44]

महर्षि शारंगधर के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पाँच, दश इन्द्रियाँ और बुद्धि ये सोलह देही अर्थात् जीवन के बन्धन हैं, इन से बन्धे रहने के कारण ही जीवात्मा को सुख-दु:ख आदि भोगना पड़ता है। यथा-

कामक्रोधौलोभमोहावहंकारश्च पञ्चमः।

दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बन्धाय देहिनः।।[45]

अज्ञान अर्थात् मोहवश पुरुष को अहित में भी हित दिखता है और वह इसी में प्रवृत होता है तो इस अज्ञान के कारण वह कर्मबन्धन को प्राप्त होता है और आत्मज्ञान हाते ही जीव कर्मबन्धन से छूट जाता है। उसे स्वभाव से ही जो प्रतिकूल जान पड़ता है वह दु:ख और स्वभाव से ही जा अनुकूल जान पड़ता है वह सुख है। दु:ख दाता ही व्याधि और सुख दाता ही आरोग्य है।[46]

आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार स्वस्थ शरीर के लिए शरीरिक एवं मानसिक स्तर का संतुलन सखना अनिवार्य होता है। शरीर और मन को आधि-व्याधियों तथा सुख-दु:खों का अधि ष्ठान स्वीकार किया गया है। यथा-

शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधिनामाश्रयोमतः।

तथा सुखानां, योगस्तु सुखानां कारणं समः।[47]

महाभारत के अनुसार जगत के समस्त प्राणियों को शारीरिक और मानसिक कष्ट होते हैं। यथा-

मनोदेहसमुत्थाभ्यामर्दितं जगत्।[48]

मानव शरीर का मन अन्तःकरण का पर्यायवाची है अत: मनोरोग शारीरिक रोगों से भी अधिक भयंकर होते हैं। दर्शन शास्त्र के अनुसार मन सुख-दु:ख का साधन है- ''सुखदु:खादिसाध नमिन्द्रियमन:'' दु:ख आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से तीन प्रकार का होता है। महर्षि चरक के अनुसार मानव का शारीरिक स्वास्थ्य मुख्यत: आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य तीन उपस्तम्भों पर आधारित है, इन तीन अवलम्बों से आधारित शरीर बल और कान्ति से वृद्धि युक्त होकर जीवन पर्यन्त दीर्घायु तक बना रहता है। यथा-

त्रयः उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नोब्रह्मचर्यमिति।[49]

उपनिषदों में समस्त इन्द्रियों को अश्व, मन को लगाम, बुद्धि को सारथि, आत्मा को रथी तथा शरीर को रथ माना गया है। यथा –

आत्मानर्थ्ठरथिनं विद्धि शरीरर्थ्ठरथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धिमनः प्रगहमेव च च।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयार्थ्ठस्तेषु गोचरान्।[50]

मानव मन अनेक विकारों से भरा पड़ा है तथापि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह तथा मात्सर्य नामक षड्विकाररूपी आन्तरिक शत्रु व्यक्ति को अधिक पीड़ित करते हैं। इन्हीं के द्वारा जीवन में अधिकतम मानसिक रोग उत्पन्न हो हैं।

ज्योतिषशास्त्र में मानसिक रोग –

जीवन में कब, कैसे और क्यों मानस रोगों का उद्भव होता है, इसकी पर्याप्त जानकारी का उल्लेख ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। इस शास्त्र के अनुसार हमारे तपःपूत ऋषियों ने अपने तपोबल और योगसाधना द्वारा **अणोरणीयान् महतो महीयान्** और **अणोरणुतरः साक्षादीश्वरो महतो महान्** एवं **यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे** के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का आत्मसाक्षात्कार व्यष्टि और समष्टि अर्थात् जीव और ब्रह्माण्ड, नर और नारायण तथा पुरुष और प्रकृति के मध्य तादात्म्य को स्पष्ट किया है। उनके इस सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्माण्ड एवं समस्त चराचर जगत् एवं मानव शरीर की उत्पत्ति पञ्चमहाभूतों से हुई है। शरीर का ठोस भाग(अस्थियाँ आदि) भूमि तत्त्वों से,जलीय भाग जल महाभूत से, शारीरिक अग्नियाँ अग्नि महाभूत से, प्राणवायु आदि वायुमय भाग वायु महाभूत से तथा शरीर का खाली भाग आकाश महाभूत द्वारा निर्मित है। अतः–

छिति जल पावक गगन समीरा। पञ्चरचित यह अधम शरीरा।।[51]

इन पञ्चमहाभूतों में पृथ्वी भूत की अधिकता होने के कारण शरीर को पार्थिव शरीर कहा जाता है। शरीर में विद्यमान त्रिदोष भी इन्हीं तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कफदोष पृथ्वी एवं जल महाभूत का, पित्तदोष अग्नि महाभूत का, वातदोष वायु और आकाश महाभूत का प्रतिनिधित्व करता है। अतः त्रिदोष एवं पञ्चमहाभूत दोनों के द्वारा ही शरीर का निर्माण और प्रत्येक क्रिया सम्पन्न होती है। इस सिद्धान्त के आधार पर हमारा सौरमण्डल और इसका प्रत्येक सदस्य (ग्रह, उपग्रह, क्षुद्रग्रह, उल्का, धूमकेतु आदि) एवं भूमि तथा भूमि पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी सभी ब्रह्माण्ड सम्बन्धी पदार्थों से निर्मित हैं। अतः भूमि तथा भूमि पर समस्त जड़-चेतन ग्रहों की ऊर्जा से प्रभावित होता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार भौमादि पांच तारा ग्रह पञ्चमहाभूतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मंगल अग्नि , बुध भूमि , बृहस्पति आकाश, शुक्र जल एवं शनि वायु महाभूत का प्रतिनिधित्व करता है–

शिखीभूखपयोमरूद् णानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण।[52]

सूर्य और चन्द्रमा को तो साक्षात रूप से पञ्चमहाभूतों से निर्मित जगत् की उत्पत्ति तथा मनुष्य की जीवनदायिनी शक्ति के संचार के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः उपनिषद् में कहा गया है–

''अग्नीषोमत्मकं जगत्''[53]

उपरोक्त दोनों के अर्थ को स्पष्ट करता हुआ सूर्यसिद्धान्त का अभिमत–

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वंगारकादयः। त्त

तेजोभूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे।।[54]

मानसिक रोग में मुख्य विचारणीय उपकरण– मानव शरीर एवं मन की संरचना की दृष्टि से जन्म कुण्डली का लग्न जातक का शरीर, नवमांश सूक्ष्म शरीर, सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मन एवं अष्टम भाव आयु (मृत्यु) होता है। अतः इन सब का विचार रोगज्ञान में निश्चित रूप से करना चाहिए।

सत्त्व आदि गुणों का विचार – रोग विचार विशेषतया मानसिक रोग विचार में सूर्य आदि ग्रहों के सत्त्व आदि गुणों का विचार करना आवश्यक है। गुणों की दृष्टि से सूर्य और गुरु सत्त्वगुणी, बुध और शुक्र रजोगुणी तथा मंगल एवं शनि तमोगुणी ग्रह हैं। यथा–

चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्की यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि।[55]

क्योंकि रजोगुण एवं तमोगुण व्यक्ति को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अवगुण देते हैं, जिससे मानसिक रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना निरन्तर बनी रहती है। यथा–

यः सात्त्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः।

रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तःपुरुषोऽतिशूरः।

तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः।[56]

चन्द्र– चन्द्र स्थायी रूप से मन का कारक है– **कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः।**[57]

कालस्यात्मा भास्करश्चित्तमिन्दुः। [58]

वेद के अनुसार भी चन्द्रमा मन का कारक है– **चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**[59]

संहिताओं के अनुसार मन (हृदय) को चेतना ओर ओज का अधिष्ठान माना गया है। यथा–

हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयोमतम्।[60]

आचार्य सुश्रुत ने हृदय के सम्बन्ध में कहा है–

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम्।[६१]

आयुर्वेद के अनुसार शरीर को रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीर को धारण करते हैं अतः इन्हें धातु कहते हैं। ये सप्तधातु वात-पित्त-कफ से दूषित होते

हैं इसलिये इन्हें दूष्य भी कहते हैं।[62]

इनमें से रक्त धातु का मूल कारक या स्वामी ग्रह चन्द्रमा है-**अस्थिरक्तमज्जात्वग्वसाशुक्रस्नायूनि सूर्यादीनां धातवः**[63] अतः रोग विचार में चन्द्र ग्रह का विचार करना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

शरीर में रक्त धातु के महत्त्व के सम्बन्ध में प्राप्त अन्य मत-

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।

तस्माद्यत्नेन संरक्ष्य रक्तं जीव इति स्थितिः।[64]

कालपुरुष के शरीर में ग्रह विन्यास करते समय चन्द्रमा को हृदय तथा गले के स्थान में न्यासित किया गया है अतः गले हृदय का विचार करना भी आवश्यक है।

प्राणी का समस्त शरीर चेतना का स्थान होता है परन्तु हृदय (मन) विशेष कर चेतना स्थान है क्योंकि उसके आश्रय से ही सब होता है, यह ओज का आधार स्थल भी है। यथा-

''चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः''

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार लग्नगत चन्द्रमा से जातक गूँगा, उन्मत्त, उन्मादी, विवेकहीन (मूर्ख), अन्धा, नीचकर्म प्रवृत्त और नौकर होता है- **मूकोन्मत्तजडान्धहीनवधिरप्रेष्याः शशांकोदये**[65]। अतः चन्द्र की दुर्बल एवं अस्त आदि अवस्थाएँ मानसिक स्थिति को निश्चित हीं प्रतिबिम्बित एवं प्रभावित करती है। यह दूसरों के प्रति अनुराग भावनात्मक प्रतिक्रियाओं भावनों और मानसिक योग्यताओं आदि का सूचक है।

बुध - बुध नाड़ी मण्डल, ज्ञान, बुद्धि, विवेक, वाणी, शिक्षा एवं व्यवहार की समझ तथा जटिलताओं को दर्शाता है। परन्तु इसका शत्रु चन्द्र ग्रह है। अतः मन के विवेक एवं ज्ञान-विज्ञान से इसका गहरा योगी-प्रतियोगी सम्बन्ध होता है।

गुरु- गुरु सबसे शुभ ग्रह है। यह विचारों की परिपक्वता एवं बुद्धिमत्ता का कारण है, गुरु का स्वभाव बुध के लिए सम परन्तु बुध ग्रह गुरु का शत्रु है। अतः पूर्णतः स्पष्ट है की तर्क की सीमित सीमाएँ बुद्धिमत्ता के प्रयोग में अवरोध उत्पन्न कर देती हैं।

लग्न तथा मेष राशि - मेष राशि और प्रथम भाव दोनों कालपुरुष के सिर का द्योतक हैं। लग्न प्रथम भाव में है, जो जातक का सिर है। मेष आदि द्वादश राशियों में मेष राशि भी जातक का सिर होती है। अतः अच्छे मानसिक स्वभाव के लिए मेष राशि और लग्न दोनों का शुभ होना आवश्यक है।

पाँचवां भाव -पाँचवां भाव कल्पना शक्ति, चिन्तन, तर्क तथा बुद्धिमत्ता का है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए पाँचवां भाव या पञ्चमेश पीड़ित न होकर शुभ प्रभाव में होना चाहिए।

विचारणीय शुभाशुभ योग - उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त कुण्डली में कुछ विशेष अशुभ तथा शुभ योग भी विचारणीय होते हैं। अशुभ योग मानसिक रोग को बढ़ावा देते हैं तथा शुभ योग उसका प्रतिरोध करते हैं।

केमुद्रमयोग - जब चन्द्रमा के दोनों ओर या चन्द्र से केन्द्र में कोई ग्रह न हो या दोनों में से एक प्रतिकूल योग हो। स्वस्थ मन के लिए चन्द्र को सहारे की आवश्यक्ता होती है। जब चन्द्र से दूसरे तथा बारहवें स्थान में कोई ग्रह न हो तो यह स्थिति उस कुण्डली में मानसिक दुर्बलता की सूचक होती है।[66]

गजकेसरीयोग - चन्द्र से केन्द्र में गुरु का होना यह एक अतिबली शुभ योग होता है। केन्द्र में बैठे ग्रह एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं चन्द्र से केन्द्र में बैठा गुरु, चन्द्र को बली बनाता है।[67]

चन्द्र अधियोग - चन्द्र से छठे, सातवें, आठवें स्थान मे शुभं ग्रह हों तो चन्द्राधियोग होता है। इन भावों में स्थित शुभ ग्रह चन्द्रमा की शक्ति में वृद्धि तथा पाप ग्रह बाधा उत्पन्न करते हैं।[68]

चन्द्र पर पाप प्रभाव - अधिक्तर मानसिक असन्तुलन तभी होता है जब चन्द्र पीड़ित हो। चन्द्र पर पाप प्रभाव हाने के कारण साधारण मतिभ्रम से लेकर न्यूरोसाईकोटिक डिस आर्डर तक हो जाता है। चन्द्र तभी पीडित होता है जब वह दुर्बल हो, छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो तथा पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो कर शत्रुराशि, नीचराशि,अस्त एवं क्षीण आदि हो।

पापी ग्रहों से पीड़ित चन्द्रमा का फल -

सूर्य - तीक्ष्ण स्वभाव, झागड़ालू बुद्धि स्व्यं के तर्कों से प्रेरित।

मंगल - तीक्ष्ण स्वभाव, आक्रमक, हिंसक।

शनि - तीव्र अवसाद, सनकी, उदासीयुक्त,पागलपन।

राहु- चालाक, व्यवहार में विसंगति, अकारण भय, आत्मघाती प्रवृति।

केतु - सनकी, आत्म्घाती प्रवृति, भय, दूसरों पर अकारण सन्देह करना।

विभिन्न ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर मनो विकार से सम्बन्धित योग-

उन्माद रोग - वात रोग और उन्माद रोगों को बताते हुए वराहमिहिर कहते हैं जिस जातक के जन्म काल में लग्न से सप्तम स्थान में शनैश्चर और लग्न में बृहस्पति स्थित हो तो वह जातक वात रोगी होता है। जिसके जन्म काल में सप्तम स्थान मंगल और लग्न में बृहस्पति बैठा हो तो जातक उन्माद रोगी होता है। शनैश्चर लग्न में, मंगल नवम, पञ्चम या सप्तम स्थान में स्थित हो तो भी जातक उन्माद रोगी होता है। शनैश्चर से युक्त क्षीण चन्दमा द्वादश भाव में स्थित हो तो भी जातक उन्माद युक्त होता है। यथा -

संस्पृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ,
सोन्मादोऽवनिजे स्थितेऽस्तभवने जीवे विलग्नाश्रिते।

तद्वत्सूर्यसुतोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे,

जातो वा ससहस्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगे।[69]

भावमञ्जरीकार का कथन है कि रोगों का विचार करते समय छठे स्थान तथा मंगल का विचार विशेष रूप से करना चाहिए -

सञ्चिन्तयेत्क्षतरिपुव्यसनानि रोगान्।

भौमारितः किमुगदान् गदभाव यातैः।[70]

क्रोध के विषय में आचार्य ढूढ़िराज का कथन है कि जन्म समय में सूर्य के नवमांश में चन्द्रमा और चन्द्रमा के नावमांश में सूर्य हो तो वह मनुष्य क्रोधी और रोगी होता है।

परस्परांशोपगतौ रविन्दू रोषामयं तौ कुरुतो नराणाम्।

एकैकगेहापगतौ तु तौ वा तमेव रोगं कुरुतो नितान्तम्।[71]

छठे भाव में चन्द्रमा हो तो जातक मन्दाग्नि रोग से युक्त, निर्दयी, क्रूरस्वभाव वाला, बहुत आलसी, निष्ठुर, दुष्ट हृदय तथा क्रोध के आवेश में सबसे शत्रुता करने वाला होता है। यथा-

मनदाग्निः स्यान्निर्दयः क्रौर्ययुक्तोऽनल्पालस्यो निष्ठुरो दुष्टचित्तः।

रोषोवेषोऽत्यन्तसञ्जातशत्रूः शत्रुक्षत्रे रात्रिनाथे नरः स्यात्।[72]

पिशुन योग - मानसागरी के अनुसार चतुर्थ एवं नवम भाव का राहु पिशुन् अर्थात् चुगलखोर बनाता है। यथा-

नीचानुरक्तः पिशुनश्च पापी पुत्र्यैकभागी कत्तयोषिदासाम्।[73]

धर्मस्थिते चन्द्ररिपौ मनुषश्चाण्डालकर्मा पिशुनः कुचैलः।।[74]

वञ्चक योग - यदि एकत्र अर्थात् एक राशि में सूर्य, शनि, चन्द्रमा, बुध एवं बृहस्पति हों तो व्यक्ति उन्मादी तथा वञ्चकवृत्ति वाला होता है। यथा-

परान्नभोजी सोन्मादः प्रियतप्तश्च वञ्चकः।

भवेद् दर्वच्यता युक्तः तथा परवधूरतः।[75]

आत्मघती योग - लग्न में क्रूर ग्रह तथा लग्नेश क्रूर ग्रह की राशि में हो तो जातक आत्महत्या करता है। यथा-

क्रूरे लग्ने भवेज्जातः तत्स्वामी क्रूरराशिगः।

आत्मघाती भवेत् तस्य शरीरेकष्टमादिशेत्।

जिस ताजक की कुण्डली में लग्नेश पाप ग्रह से युक्त हो, लग्न पापर्त्तरी योग में हो तथा सप्तम में कोई पाप ग्रह हो तो वह आत्महत्या करता है। यथा-

लग्नपः पापसंयुक्तो लग्ने वा पापमध्यगे।

लग्नात् सप्तमगः पापस्तदाचात्मबधी भवेत्।।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में विविध प्रकार के योगों द्वारा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों की उत्पत्ति का ज्ञान सम्भव होता है। इन योगों पर गोचर, दशा आदि के आधार पर वर्तमान समय में शोध करने की नितान्त आवश्यकता है।

संदर्भ :

1 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 1/15
2 शारङ्गधरसंहिता, पूर्वखण्ड 5/55
3 यजुर्वेद 36/24
4 कुमारसम्भव, सर्ग 5/33
5 आरोग्याङ्क, कल्याण पृष्ठ 98
6 काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय, स्मरिका पृष्ठ 175
7 साङ्ख्यकारिका, का० 1
8 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 11/48
9 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 1/24
10 महाभारत, आरण्यपर्व 2/22
11 वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकार श्लो० 19
12 अष्टाङ्गहृदय सूत्रस्थान 12/57
13 चरकसंहिता, उत्तरतंत्र अ० 40
14 प्रश्नमार्ग 13/29
15 शातातपस्मृति 1/5
16 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 15/3
17 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 21/7
18 सुश्रुतसंहिता, उत्तरस्थान 66/6
19 सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान 1/3, वि०वि० पृ० 10
20 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 26/25
21 अष्टाङ्गहृदयसंग्रह, सूत्रस्थान 20
22 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 42/5
23 उद्धृत विकृति विज्ञान, अ. 2, पृ. 11
24 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 1/56
25 चरकसंहिता, विमानस्थान 6/8
26 सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान 1/3
27 सुश्रुतसंहिता, शरीरस्थान 1/20
28 आरोग्याङ्क, कल्याण पृ० 149
29 चरकसंहिता, शारीरस्थान 4/37
30 चरकसंहिता, विमानस्थान 6/6
31 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 1/25
32 चरकसंहिता, शारीरस्थान 1/10
33 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 7/51
34 श्रीमद्भगवद्गीता 3/37

35 महासुभाषित-संग्रह सूत्र सं० 2959
36 महासुभाषित-संग्रह सूत्र सं० 14354
37 महासुभाषित-संग्रह सूत्र सं० 14351
38 महासुभाषित-संग्रह सूत्र सं० 14350
39 चरक संहिता, सूत्रस्थान 11/45
40 चरकसंहिता, शारीरस्थान 1/102
41 चरकसंहिता, शारीरस्थान 1/18
42 चरकसंहिता, निदानस्थान 7/22
43 श्रीमद्भगवद्गीता 2/62-63
44 शारङ्गधरसंहिता, पूर्वखण्ड 5/69
45 शारङ्गधरसंहिता, पूर्वखण्ड 5/72
46 शारङ्गधरसंहिता, पूर्वखण्ड 5/73
47 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 1/54
48 महाभारत, आरण्यपर्व 2/21
49 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 11/33
50 कठोपनिषद् 1/3 मन्त्र 3-4
51 रामचरितमानस, कि० का० 10/2
52 बृहज्जातक 2/6
53 बृहज्जावालोपनिषद् 2/4
54 सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय श्लो० 24
55 बृहज्जातक 2/7,जातकपारिजात 2/6
56 बृहज्जातक भट्टोत्पल टीका
57 बृहज्जातक 2/1, फलितमार्तण्ड 2/4
58 जतकपारिजात 2/1
59 शुक्लयजुर्वेदसंहिता 31/12
60 शारङ्गधरसंहिता, पूर्वखण्ड 5/49
61 सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान 4/34
62 अष्टाङ्गहृदयसूत्र 1/13
63 जातकतत्त्व, संज्ञातत्त्व प्रकीर्णाध्याय सूत्र 47
64 विकृति विज्ञान पृ० 62
65 बृहज्जातक 20/4
66 जातकपारिजात 7/71,73, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, पूर्वखण्ड 18/1
67 जातकपारिजात 7/116, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, पूर्वखण्ड 18/1
68 जाकतपारिजात 7/113
69 बृहज्जातक 23/13
70 भावमञ्जरी 2/27
71 ज्योतिर्विदाभरण
72 जातकाभरण, चन्द्रभावफलाध्याय श्लो० 6
73 मानसागरी, राहुभावाध्याय श्लो० 4
74 मानसागरी राहुभावाध्याय श्लो० 9
75 मानसागरी राहुभावाध्याय श्लो० 8

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016